अश्वमेध

अश्वमेध

लक्ष्मीकांत वैष्णव



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

अनुक्रम

"हाँ रत्नक, यह सुविधा केवल सरकारी नौकरी में ही प्राप्त है। प्राइवेट नौकरियों में, काम न करनेवाले को तत्काल लात मारकर निकाल देते हैं। यदि लात नहीं भी मारते तो निकाल तो देते ही हैं। फिर लातें वह अपने आप खाता रहता है।"

"सरकारी नौकरी में क्यों नहीं निकालते?"

"निकालना मुश्किल होता है रत्नक! सरकारी नौकरी जिस प्रकार कठिनाई से मिलती है, उसी प्रकार उसमें से निकलना या निकाला जाना दोनों कठिन होते हैं।"

"तुम टॉम्पहॉक मच्छर की बात कर रहे थे?" रत्नक ने कहा।

"हाँ रत्नक," [illegible] ने कहा, "मैं कह रहा था कि टॉम्पहॉक मच्छर अपने बीवी-बच्चों सहित उस सरकारी क्वार्टर के बाथरूम की एक सीली दरार में रह रहा था तथा उस क्वार्टर में रहनेवाले सरकारी नौकर तथा उसके बीवी-बच्चों का खून पीकर अपना पेट पाल रहा था।"

"इससे वह सरकारी नौकर बीमार भी पड़ता होगा?"

"हाँ, रत्नक, उसे अक्सर मलेरिया होता था। मगर इलाज और दवाओं पर खर्च किया हुआ पैसा चूँकि सरकारी नौकर सरकार से वसूल लेता था, टॉम्पहॉक मच्छर को कोई अफसोस नहीं होता था। किन्हें काटना चाहिए, किन्हें नहीं, यह उसके बाप मच्छहॉक ने उसे सिखाया था। मच्छहॉक कुछ दिनों तक नेताओं तथा विधायकों के बंगलों में भी रह चुका था। वहाँ उसने देखा था कि किस प्रकार [illegible] हो जाने पर भी [illegible] के ढेर लग जाते हैं। चूँकि वे लोग लगातार [illegible] का सेवन करते थे, उनका खून भी [illegible] हो जाता था तथा मच्छहॉक उसे छककर पीता था। परन्तु मच्छहॉक ने पाया था कि [illegible] बार काटने पर भी उन लोगों को मलेरिया नहीं होता था, या कि होता भी था तो इतना हल्का कि कुछ ही घंटों में ठीक हो जाता था।

"[illegible] के सब मोटी चमड़ी के लोग थे। [illegible] पर [illegible] डंक [illegible] बड़ी मुश्किल से होता था—मच्छहॉक ने [illegible] टॉम्पहॉक से कहा था। [illegible] के यह पूछने पर कि मच्छहॉक इतने [illegible] वापस नहीं क्यों आ गया? मच्छहॉक ने कहा कि [illegible]

1 [illegible]

बँगलों में वह रहता था वे बिना जनाक्रोश के खाली नहीं होते। बँगलों के निवासियों के खिलाफ तो नहीं, परंतु मच्छरों के खिलाफ उन दिनों बस्ती मे काफी जनाक्रोश जागा हुआ था तथा जमके 'फिलट' छिड़का जा रहा था। मंत्रियो, विधायकों, बड़े अफसरों तथा महत्त्वपूर्ण लोगों के बँगलों मे चूँकि पूरी ईमानदारी, लगन और निष्ठा के साथ फिलट छिड़का गया, मच्छरों को या तो मरना पडा, या जान बचाकर भागना पड़ा। चूँकि बाकी बस्ती में तथा छोटे सरकारी नौकरों की कॉलोनियो में फिलट छिड़कने में किफायत बरती गई, वह भागकर यहाँ आ छुपा। हालाँकि उसने अफसोस जाहिर किया कि जो सुख उसने भोगे, जो मजे उसने अपने जीवन मे मारे, वह अपने बच्चों को उपलब्ध नही करा सका। मंत्रियों, विधायकों और अफसरों के बँगलों से बाहर निकल आने पर, निकल आनेवालों की दुर्गति तो होती ही है, उनकी संतति भी तकलीफ पाती है।

"भदंतडंक भावुक था, तथा कष्ट का बयान करते समय अक्सर रोने लगता था। पुत्र तीक्ष्णडंक उतना भावुक नही था। दरअसल भदंतडंक भावुक इसलिए था कि उसने कभी अच्छे दिन देखे थे और अब बुरे दिन देख रहा था। तीक्ष्णडंक इसलिए भावुक नहीं था कि उसने अच्छे दिन देखे ही नही थे। लिहाजा ऐसा कुछ नही था, जिसकी याद कर-करके रोया जा सके। अपने वर्तमान को उसने सहज भाव से स्वीकार कर लिया था, क्यो-कि वही उसका अतीत भी था। इससे बेहतर कुछ हो सकता है इसका न तो उसे कभी अनुभव हुआ था और न ही वह इसकी कल्पना कर सकता था।

"विगत समृद्धि की याद कर-करके अपनी संतति के सामने रोनेवाला बाप, संतति की अपनी वर्तमान गरीबी से ज्यादा दुखदायी होता है, दमनक! भदंतडक जब मरा तो तीक्ष्णडंक को बड़ी राहत मिली। हालाँकि भदतडंक द्वारा पैदा किए गए अन्य छह मच्छरों तथा तीन सौतेली माताओं का बोझ भी उस पर आ गया था। इनमे से अधिकांश अकर्मण्य थे तथा तीक्ष्णडंक को ही उनके भोजन-पानी की व्यवस्था करनी पड़ती थी। वह उड़कर पूरे मकान का सर्वेक्षण करके आता था तथा उन आलसियो को बतलाता था कि कौन आदमी कहाँ सोया है, किसने मच्छरदानी लगा रखी है, किसने

नहीं, तथा उन मच्छरदानियों में कहाँ-कहाँ छेद हैं तथा उनमें कहाँ-कहाँ से घुसा जा सकता है। उसे अक्सर उन अकर्मण्यों के साथ उड़कर जाना पड़ता था तथा सोए आदमी का खून पिलवाकर लाना होता था। उसे यह भी बताना होता था कि समझदार मच्छर को मच्छरदानी देखकर हताश नहीं होना चाहिए। बड़े से बड़े दुर्ग में भी एकाध कमजोर स्थल अवश्य होता है। इसके अलावा मच्छरदानी के अंदर सोया आदमी रात में एक बार जरूर मच्छरदानी से बाहर आता है—चाहे जिस भी उद्देश्य के लिए आता हो। जब वह उठकर जाएगा तो मच्छरदानी ऊँची करेगा। उस वक्त अपन अंदर घुस सकते हैं और किसी सुरक्षित जगह पर बैठकर उसके वापस लौटने का इंतजार कर सकते हैं, या फिर बाहर रहकर उसकी प्रतीक्षा कर सकते हैं और जब वह वापस मच्छरदानी में घुस रहा हो, तब उसके साथ ही अपन भी अंदर प्रविष्ट हो सकते हैं।

"काटने की भी एक तरकीब होती है, पद्धति होती है, मर्यादा होती है। ऐसे काटो कि अपना काम भी चल जाए तथा सामनेवाला भी उत्तेजित न हो। भद्रतडंक द्वारा पैदा किए गए अकर्मण्य अक्सर बेरहमी से काटते थे। तीक्ष्णडंक ने अनेक बार समझाया कि खाया जानेवाला हर माल मुफ्त का नहीं होता, लिहाजा यहाँ थोड़ी नरमी बरतो मगर वे नहीं माने।"

करकट ने कहानी जारी रखते हुए कहा, "कष्ट सहन करने की भी एक सीमा होती है, दमनक ! और उस सीमा के बाद मरे से मरा आदमी भी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। एक दिन जब तीक्ष्णडंक की सौतेली माताओं तथा उनके पुत्रों ने सरकारी नौकर को काट-काटकर उसके शरीर पर ददोड़े उठा दिए और वह खुजा-खुजाकर लहूलुहान हो गया तो वह अचानक गुस्से में आ गया और उसने फ्लिट का पंप लेकर क्वार्टर के तमाम कोनों में पड़ाव डाले हुए मच्छरों की कॉलोनियाँ की कॉलोनियाँ साफ कर दीं।

"अगर आदमी में अकल हो तो वह आगत खतरे को भाँप लेता है। तीक्ष्णडंक ने तभी खतरा भाँप लिया था जब उसने सरकारी नौकर को कीटनाशक की कुप्पी आलमारी से निकालते हुए देखा था। कीटनाशक की गंध वह पहचानता था तथा ज्योंही सरकारी नौकर ने कुप्पी खोली थी, उसने अपने बीवी-बच्चों से तुरंत बाहर चल देने के लिए कहा था। पूरे

चौबीस घंटे एक नाली के किनारे काटकर तीक्ष्णडंक जब लौटा तो उसने पाया कि सरकारी नौकर को कोई हजार-डेढ़ हजार मच्छरों से मुक्ति मिल गई है तथा स्वयं तीक्ष्णडंक को अपने बाप भदंतडंक द्वारा छोड़ी गई अकर्मण्य संतति से मुक्ति मिल गई है।"

"मैदान में प्रतिद्वंद्वियों को न पाकर जैसे पहलवान खुश होता है, कवि-लेखक खुश होता है, या कि राजनेता खुश होता है, उस प्रकार हे करकट, मच्छरों से विहीन उस क्वार्टर को देखकर तीक्ष्णडंक मच्छर भी खुश हुआ होगा। यह जानकर कि अब एकछत्र साम्राज्य अपना ही है?"

"नहीं दमनक," करकट ने कहा, "शत्रु की मौत भी कई बार आदमी को उदास बना देती है, तीक्ष्णडंक-परिवार वापस लौटकर बहुत उदास हुआ। उधर सरकारी नौकर को मच्छरों से मुक्त, बिना मच्छरदानी लगाए सोया देखकर उसकी पत्नी ज्वरप्रदा बोली कि स्वामी, बदला लेने पर उतारू सरकारी नौकर के अधीन रहना ठीक नहीं, वह कभी भी हमारा अहित कर सकता है, बेहतर हो अपना ठिकाना बदल लें।

"उत्तर में तीक्ष्णडंक बोला कि सुभगे, मेरी रगों में भी सरकारी नौकर का ही रक्त बह रहा है, क्योंकि मैं हमेशा इसे काटकर ही अपना पेट भरता रहा हूँ। यह अपना अधिक नुकसान नहीं कर पाएगा, क्योंकि यह उतना बड़ा सरकारी नौकर नहीं है। नुकसान पहुँचाने की क्षमता केवल बड़े सरकारी नौकर रखते हैं, परन्तु वहाँ भी, जैसे बुध ग्रह का प्रभाव सूर्य के सामने निष्प्रभ हो जाता है, बड़ा सरकारी नौकर भी नेता नामक प्राणी के आगे अक्सर प्रभावहीन हो जाता है। यदि नेता अपने से खुश हो तो सरकारी नौकर सर के बल खड़ा हो जाए तो भी अपना कुछ नहीं बिगाड़ सकता। साथ ही तीक्ष्णडंक ने कहा कि ये सब बातें उसे अपने बाप भदंतडंक से ज्ञात हुई थीं। एक बार भदंतडंक सहित मच्छरों की सारी नस्ल की जान एक नेता की कृपा से ही बची थी। गरीबों की बस्तियों में मच्छरों का आतंक था तथा सरकारी अधिकारियों ने कहा था कि मच्छरमार दवाएँ छिड़कवा दी जाएँ। इस पर नेता ने पूछा था कि अभी चुनाव सर पर हैं, मच्छर मारने से ज्यादा वोट मिलेंगे कि मलेरियाग्रस्त बीमारों को मुफ्त दवा, कंबल, फल तथा दारू बाँटकर?

"पड़ताल के बाद जब दूसरी विधि अधिक उपयुक्त पाई गई तो मच्छरों की जान बख्श दी गई। चुनावी वोट कबाड़ने में जिस प्रकार गुंडों, अपराधियों की उपयोगिता होती है, उसी प्रकार मच्छर भी उपयोगी समझे गए।

"इस पर ज्वरप्रदा ने तीक्ष्णडंक से पूछा कि हे स्वामी, गुंडों, बदमाशों अपराधियों और समाज-विरोधी तत्वों को पालने से कई वार अपना खुद का नुकसान भी हो जाता है। मच्छरों को न मारने से उस नेता को भी तो मलेरिया हो सकता था ?

"उसे हुआ सुभगे, मगर यह भी उसके पक्ष में गया। यदि मतदाता भावुक हो तो उसे अपने घाव दिखाकर भी वोट कबाड़े जा सकते हैं। वह नेता एक सौ चार डिग्री बुखार में कंबल ओढ़कर चुनाव क्षेत्र में घूमा तथा अपनी बीमारी दिखा-दिखाकर ही चुनाव जीत गया।"

इस पर दमनक ने करकट से कहा कि हे करकट, मेरी रुचि चुनाव जीतने के नुस्खों में या राजनेताओं के जीवन में बिलकुल नहीं है। इन पर इतना लिखा और कहा जा चुका है कि वह अब ऊब पैदा करने लगा है। तीक्ष्णडंक मच्छर का क्या हुआ, यह बताओ, क्या उसके जीवन में कोई विशिष्ट घटना घटी ?

"तीक्ष्णडंक मच्छर, जैसा कि मैंने पहले बताया, सरकारी नौकर के रक्त पर पल रहा था, दमनक! और सरकारी नौकर के जीवन में जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटती हैं, वे हैं—नौकरी में भरती, पदोन्नति तथा रिटायरमेंट। बीच-बीच में स्थानांतर नामक घटनाएँ भी घटती हैं, परंतु फंडामेंटल रूल इन्हें घटना नहीं मानता।"

"तीक्ष्णडंक का क्या हुआ, यह बताओ ?"

"हुआ तो कुछ नहीं पर तुम्हारे संतोष के लिए एक घटना बयान करता हूँ। हुआ यह कि एक बार उस सरकारी नौकर के क्वार्टर में एक नेता बैठने आया। तीक्ष्णडंक ने उस नेता के हुलिए से पहचाना कि वह नेता है, क्योंकि इस प्रकार के हुलिए का वर्णन वह अनेक बार अपने बाप भदंतडंक से सुन चुका था। इस प्रकार के आदमी को काटने की इच्छा उसके मन में हमेशा से रही थी। अतः वह दौड़ा और लपककर उस नेता के गाल

पर बैठ गया तथा अपना डंक उसकी चमड़ी में घुसेड़कर उसका रक्त पीने लगा।"

"रक्त मीठा लगा होगा," दमनक ने पूछा, "फिर क्या हुआ करकट ?"

"हुआ क्या ? इससे पहले कि तीक्ष्णडंक कुछ समझ पाए कि क्या हुआ, नेता की हथेली का एक थप्पड़ उसके गाल से आकर लगा, और अगले ही क्षण तीक्ष्णडंक की लाश जमीन पर पड़ी तड़प रही थी।"

"निष्कर्ष ?" दमनक ने पूछा।

"दो हो सकते हैं," करकट ने कहा, "पहला—भ्रष्टाचारी पर आक्रमण मच्छरों के बूते की बात नहीं। दूसरा—भ्रष्टाचार की कमाई में से अपना हिस्सा वसूल करते समय सावधान रहने की आवश्यकता है। तीक्ष्णडंक को थप्पड़ पड़ने से पहले ही अपना पेट भर कर उड़ लेना था।"

इंटरव्यू

पिछले दिनों अखबारों में एक रोचक समाचार पढ़ने को मिला। समाचार था—'भीड़ भरी बस में दो महिलाएँ जेब काटते गिरफ्तार।' शीर्षक के नीचे पूरे कालम की न्यूज थी जिसमें बस का विवरण था, उन महिलाओं का संक्षिप्त जीवन-वृत्त यानी लाइफ स्केच था, जिन लोगों की जेबें काटती वे पकड़ी गई थीं उनके नाम-पते वगैरह थे। पत्रकार जिसने न्यूज दी थी, काफी खोजी किस्म का लगता था तथा उसने जरूरी के साथ-साथ काफी गैरजरूरी सूचनाएँ भी दे रखी थीं जैसी कि आमतौर पर पत्रकार लोग दिया करते हैं।

बहरहाल, मेरी रुचि न बस में थी, न बस में ठुँसी हुई भीड़ में, न उन लोगों में जिनकी जेबें काटी गई थीं और न ही उनकी जेबों में मिले पैसों में। परंतु खबर के शीर्षक ने मुझे बराबर आकृष्ट किया। महिलाएँ जीवन के हर क्षेत्र में मर्दों को टक्कर दे रही हैं यह तो देखा-सुना था मगर चोरी, सेंधमारी और जेबकतरी-जैसे व्यवसाय जिनमें कला पक्ष के साथ-साथ जोखिम पक्ष भी निहित होता है अभी तक महिलाओं के आक्रमण से अछूते थे। इस लिहाज से उक्त महिलाओं का साहस काबिले-तारीफ था। मैंने सोचा, इन महिलाओं का इंटरव्यू जरूर लेना चाहिए। लिहाजा डायरी और कलम सँभाली और पुलिस थाने पहुँचा।

मेरे हाथ में डायरी और कलम देखकर बाहर खड़ा पुलिस का सिपाही

चौंका। उसने मुझे ऊपर से नीचे तक घूरकर देखा। शायद वह मुझे भी पुलिसवाला समझ रहा था तथा अंदर ही अंदर अनुमान लगाने की चेष्टा कर रहा था कि कहीं मैं खुफिया पुलिस से तो नहीं हूँ। एक बार एक पुलिस सिपाही ने मुझसे कहा था कि पुलिसवालों के चार हथियार प्रमुख होते हैं—डायरी, कलम, ड्रेस और डंडा। इनमें सबसे ज्यादा असरदार हथियार पहले दो, यानी डायरी और कलम ही होते हैं। बाजार में किसी फेरीवाले, ठेलेवाले, तांगे-टैक्सीवाले, कार-स्कूटरवाले या किसी भी पैदल आदमी को रोककर डायरी और कलम हाथ मे निकाल लो, तो सामनेवाले के चेहरे पर घबराहट के भाव आ जाते हैं और अनायास उसका हाथ अपनी जेबों में रखे नोटों पर चला जाता है। बाकी कुछ कहने की जरूरत नहीं रहती। नाटक का अगला सीन इस बात पर निर्भर करेगा कि आपने डायरी और कलम किस रुतबे और कड़कपन के साथ निकाले हैं तथा डायरी और कलम देखकर सामनेवाले के चेहरे पर किस सीमा तक घबराहट और दहशत पैदा हुई है।

जो पुलिसमैन मुझे घूरकर देख रहा था शायद जल्दी ही समझ गया कि हाथ में डायरी और कलम होने के बावजूद मैं पुलिसवाला नहीं हूँ। एक आम पुलिसवाला, चेहरे से भी पुलिसवाला लगता है तथा सादी वर्दी के बावजूद दूर से पहचान मे आता है। उसने मुझसे कड़ककर पूछा, "क्या काम है?"

मैंने अपने हाथ मे लिया अखबार उसे दिखाया, उसमें छपी न्यूज उसे बताई और कहा कि मुझे उन महिलाओं से मिलना है। उत्तर मे उसने कहा कि मुझे पहले थानेदार से मिलना पड़ेगा और वह कम से कम बारह चक्कर कटवाएगा तब मिलेगा। मैंने कहा कि मैं तेरह चक्कर काट लूँगा। इस बात का मुझे अभ्यास है। मरे से मरे आदमी के पास भी यदि आप अपने काम से जाएँ तो वह बारह-चौदह चक्कर तो कटवा ही लेता है और फिर भी काम नहीं करता, तो फिर यह आदमी तो थानेदार है। मैंने पुलिस-मैन से कहा कि मेरी पर्ची थानेदार तक पहुँचा दे। पता नहीं क्यों, उसने मेरा यह काम निशुल्क कर दिया। उधर थानेदार ने भी न जाने क्यों तत्काल मुझे अंदर बुलवाया और चेतावनी दी कि यदि मैं सकुशल थाने

के बाहर निकलना चाहता हूँ और आगे भी थाने-कोतवाली के चक्कर से बचना चाहता हूँ तो महिलाओं वगैरह में रुचि न लूं। महिलाओं को छेड़नेवालों को वह तत्काल पकड़कर बंद कर दिया करता है।

मैंने उससे कहा कि मैं लेखक किस्म का आदमी हूँ और तुम जानते ही हो कि लेखक लोग अपने घर की महिला की ही तरफ पूरा ध्यान नहीं दे पाते तो बाहर की स्त्रियों का सवाल ही कहाँ उठता है। उत्तर में थानेदार ने कहा कि मैं बहुत से लेखकों को जानता हूँ, ये लोग अपने घर की स्त्री को छोड़कर बाकी दुनिया की हर स्त्री में रुचि रखते हैं। उसने कहा कि नौकरी में आने के पहले वह खुद भी लेखक रह चुका है तथा अब भी कभी-कभार कविता करता है। उसने यह भी बताया कि कवि-लेखक बनने की अपेक्षा थानेदार बनना उसने ज्यादा बेहतर पाया। अधिकार की किसी भी जगह पर बैठ जाने से आपके कवि-लेखक रूप की भी कदर होने लगती है तथा प्रतिष्ठा पाना आसान हो जाता है। उसने कहा कि पिछले दिनों उसने एक प्रकाशक के लड़के को पकड़कर वो सुटाई दी कि बदले में प्रकाशक उसके तीन कविता संग्रह मुफ्त में छापकर दे गया।

अब वह सोच रहा है कि किसी समीक्षक को पकड़कर रगेदा जाए ताकि संग्रहों की उचित समीक्षा व चर्चा हो सके।

उसने कहा कि सिर्फ़ लेखक होने से कुछ नहीं होता। एक लेखक की तुलना में तो एक छोटा-मोटा चोर ज्यादा चर्चित व मशहूर हो लेता है। उसने एक चोर लेखक का जिक्र भी किया जो दूसरों की रचनाएँ चुरा-चुराकर ही इतना मशहूर हो गया था, जितना कि उन रचनाओं के मौलिक लेखक भी नहीं हो सके थे।

इस आदमी की बात सुनकर मुझे लगा कि नौकरी में भी समझदार लोग आते हैं और अपनी नौकरी के बावजूद समझदार बने रहते हैं। मैंने उसकी तारीफ की और कहा कि मैं उन जेब कटनेवाली महिलाओं के इंटरव्यू लेना चाहता हूँ। इस पर उसने कहा कि एक अपराधी अपराध के बाद इतने स्तरों पर इंटरव्यू फेस करता है कि उसकी इंटरव्यू दे सकने की क्षमता जवाब दे चुकी होती है। अपराध करने के दौरान पकड़े जाने

पर पहला इंटरव्यू तो सीन पर हाजिर लोग ही ले लेते हैं। उसके बाद का इंटरव्यू पुलिसमैन और थानेदार लेते हैं। फिर वकील, जमानतदार, गवाह, कचहरी और जेल, जगह-जगह उसका इंटरव्यू लिया जाता है। इन सबसे बेचारा निबटता है तो आप-जैसे लेखक-पत्रकार उसका इंटरव्यू लेने पहुँच जाते हैं। बहरहाल, आप कहते हैं तो हम अपराधियों को आपसे मिलवा देते हैं।

उसने दो सिपाहियों को बुलाया और उनसे कहा कि वो जेबकटीवाले केस के अभियुक्तों को ले आओ।

सिपाहियों ने दो औरतों और दो आदमियों को लाकर खड़ा कर दिया। थानेदार बोला कि ये औरतें हैं जिन्होंने जेब काटी थी और ये वो आदमी हैं जिनकी जेबें काटी गई थी।

मैंने कहा कि ये आदमी किस अपराध में बंद हैं तो थानेदार बोला कि इनकी जेबों में बहुत कम पैसे थे। हालांकि सूचीबद्ध अपराधों में इसका कहीं जिक्र नहीं है और इस पर कोई दफा भी नहीं लगती, मगर पास में पैसा न होना काफी संगीन अपराध माना गया है। वैसे फिलहाल हमने इन्हें इन महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार के आरोप में बंद कर रखा है। महिलाएँ कहती हैं कि उन्होंने कोई जेब नहीं काटी, बल्कि इन आदमियों ने ही भीड़ भरे स्थान पर उन लोगों के साथ छीन-झपट और दुर्व्यवहार किया है। महिलाओं से दुर्व्यवहार, जेब काटने की तुलना में ज्यादा गंभीर अपराध है।

"अब क्या करोगे ?" मैंने थानेदार से पूछा।

"कुछ नहीं। जो पक्ष अपने को निर्दोष साबित कर देगा उसे छोड़ देंगे।"

उसने कहा कि उसने दस-पंद्रह चश्मदीद गवाहों को भी थाने में बिठा रखा है जो घटना के समय बस में सवार थे। अब हालत यह है कि अभियुक्त लोग तो गवाहों को पहचान रहे हैं, मगर गवाह अभियुक्तों को नहीं पहचान रहे।

वे कहते हैं कि हमने इन्हें पहले कभी नहीं देखा। न ही उनके सामने कोई जेब काटी गई और न ही महिलाओं के साथ कोई झूमा-झटकी

उन्होंने देखी । उसने कहा कि कानून की आँखें गवाह होता है । जब गवाह कह रहा है कि उसने कोई घटना नहीं देखी तो इसका सीधा मतलब है कि घटना नहीं घटी । वैसे जब इन्हें थाने लाया गया था तो सब कह रहे थे कि हमारे सामने सब घटा है। मगर थाने में चार-छः घंटा बैठने के बाद ही इनकी स्मृति धुंधलाने लगी। अभी बारह घंटे ही हुए हैं और ये कह रहे हैं कि हमने कुछ नहीं देखा, हमें घर जाने दो। हो सकता है चौबीस घंटे यहाँ बैठने पर ये खुद अपने-आपको पहचानने से इन्कार कर दें ।

जाहिर है कि मेरी रुचि अभियुक्तों में नहीं बची थी । अब मैं उन गवाहों के इंटरव्यू लेना चाहता था ताकि घटना की वास्तविकता का पता लग सके ।

मेरा घर

यूं तो मेरा कोई घर नहीं। मगर आमतौर पर आदमी जहां रहता है, उसे अपना घर कहकर संतोष कर लिया करता है। मेरे पिता जी की भी यही स्थिति थी। उनके पिता जी की क्या हालत थी, मुझे नहीं मालूम। मगर जहां तक मेरी जानकारी है, पिता जी का कोई निजी मकान नहीं था। मगर इसके बावजूद बचपन में उनके मुंह से सुना हुआ एक डायलॉग मुझे अब तक याद है—'हम अपने घर में नंगे होकर नाचें, तुम्हें मतलब ?' यह बात उन्होंने एक पड़ोसी से कही थी। 'तब नाचो न।' पड़ोसी ने गुस्से से कहा था और तपाक से अपने घर में घुसकर दरवाजा बंद कर लिया था। मुझे लगा था कि पिता जी अभी अतलून-पतलून उतारकर फेंकते हैं और नाचना शुरू करते हैं। मगर वे नहीं नाचे थे। दो-तीन दिन तक मैं सहमा-सहमा रात में उठ-उठकर देखता भी था कि पिता जी—जैसा उन्होंने कहा था, वैसा नाच रहे हैं या नहीं। मगर वे नहीं नाचे थे।

'नाच न जाने, आंगनवा टेढ़ा' मुझे यह कहावत उन दिनों अनायास ही याद आ गई थी। घसीटे मास्साब, जो हमारी दूसरी कक्षा के क्लास-टीचर थे, उन्होंने यह कहावत रटवाई थी तथा वाक्य में प्रयोग करना भी बतलाया था। जरूर हमारे घर का फर्श कुछ टेढ़ा है, नहीं तो पिता जी नाचते जरूर—मैंने सोचा था, क्योंकि पिता जी अक्सर कहा करते थे

कि जो कहो, उसे करके दिखाओ।

घर के बारे में एक दूसरी धारणा हमारे ड्रिल मास्साब ने बतलाई थी। ड्रिल कराने के अलावा वे गणित भी पढ़ाते थे तथा कहते थे कि गणित भी एक ड्रिल है तथा दोनों का एक-दूसरे से निकट का संबंध है, उन्हें देखकर लगता भी था, क्योंकि वे ड्रिल कराते-कराते गणित पढ़ाने लगते थे तथा अनेक बार गणित पढ़ाते-पढ़ाते ड्रिल कराने लगते थे। जिस लड़के से गणित नहीं बनता था, उसे क्लास में बेंच पर खड़ा करके वे तब तक ड्रिल कराते थे जब तक कि हांफते-हांफते उसके मुंह से गणित के सवालों के उत्तर न निकलने लगें।

ड्रिल मास्साब के बारे में कहा जाता था कि उनकी पत्नी उन्हें छोड़कर चली गई थी। मेरे सहपाठियों की राय में इसका कारण ड्रिल अथवा गणित में से ही कोई एक था। क्योंकि हमारे साथ पढ़नेवाले अनेक लड़के भी ड्रिल मास्साब की खूंख्वार ड्रिल तथा गणित से घबराकर स्कूल छोड़कर चले गए थे तथा दूसरी जगह पढ़ने लगे थे।

बहरहाल, ड्रिल मास्साब कहा करते थे कि घर वह होता है जहां घरवाली हो। इसी बात को वे संस्कृत में भी कहते, 'गृहिणी गृहमुच्यते'। हालांकि वे अपने निजी मकान में रहते थे, मगर स्पष्ट कहते थे कि उनका अपना कोई घर नहीं है। वैसे उनके सहयोगी मास्साबों में से कुछ अक्सर कहते थे कि वे पुन: घर बसाने की सोच रहे हैं।

बचपन में अनेक बातों को लेकर कनफ्यूजन रहता है। 'घर' शब्द के बारे में भी कोई धारणा मेरे मन में स्पष्ट नहीं थी। चिड़ियाघर, अजायबघर, डाकघर, सिनेमाघर आदि बड़े घरों से लेकर कहवाघर, रसोईघर, नहानघर आदि छोटे घरों तक अनेक तस्वीरें थीं घर के बारे में। 'बीवी-बच्चों के बिना घर घर नहीं रहता।' जैसी कुछ कहावतें भी थीं जो 'घर' शब्द को एक दूसरा ही आकर देती थीं।

मैंने पिता जी से घर का अर्थ पूछा था तो उन्होंने कहा था कि अपन 'नंगे नवाब, किले पे घर' हैं। साथ ही उन्होंने मुझे स्कूल की लायब्रेरी से शब्दकोश लेकर देखने के लिए कहा था। शब्दकोश में घर शब्द के जो अर्थ थे, उनमें प्रमुख था—'आदमी के रहने की जगह' पिता जी, जो

किराए के अनेक मकान बदल चुके थे, अक्सर कहा करते थे कि अधिकांश मकान मालिक 'जानवर' होते हैं, आदमी नहीं। जाहिर है कि जिन घरों के मालिक जानवर थे, वे 'घर' की परिभाषा मे नहीं आते थे और इसी लिए शायद हम लोग उन मकानों को जल्दी ही छोड़ दिया करते थे।

घर शब्द के अन्य अर्थ थे 'दीवार से घिरा और छाया हुआ स्थान', 'स्थान', 'ठिकाना', 'स्वदेश', 'वतन', 'कुल', 'घराना,' 'छेद', 'कोठा', 'खाना' आदि-आदि यानी घर के संकीर्ण से लेकर व्यापकतम अर्थ तक दिए हुए थे। घर को लेकर कुछ कहावतें भी शब्दकोश में थीं, मसलन घरघुसरा, घर का अच्छा, घर का भेदी, घर की मुर्गी वगैरह।

किसी भी चीज के बारे मे ज्यादा पड़ताल करना विभ्रम पैदा करता है, लिहाजा मैंने घर के बारे मे अधिक चिंता करना छोड दिया और अपने रहने की जगह को 'घर' कहता चला आया। घर भले ही किराए का हो, जब तक मकान मालिक को एतराज नहीं है, उसे सुरक्षित रूप से अपना घर कहा जा सकता है।

स्कूल मे 'मेरा घर' विषय पर अक्सर निबंध लिखने के लिए आता था। दो-चार बार ऐसा भी हुआ कि मकान मालिक का लड़का भी मेरे साथ ही पढ़नेवाला होता था तथा हम दोनों एक ही घर पर निबंध लिखकर अपने मास्साब को बतलाते थे। एक बार ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होने पर मास्साब ने पूछा था, "तुम लोग भाई हो क्या?" इन्कार करने पर मास्साब का दूसरा सवाल था, "फिर बताओ, किसने किसकी नकल मारी है? इसके मकान मे भी गोभी लगी है, तुम्हारे मकान में भी गोभी लगी है। इसके घर में भी चार कमरे हैं, तुम्हारे घर मे भी चार कमरे हैं। इसके बगीचे मे भी बकरी घुसती है, तुम्हारे बगीचे मे भी बकरी घुसती है। इसके घर का नाम भी बसंत-निवास है, तुम्हारे घर का नाम भी बसंत-निवास है।"

अपराध स्वीकार कराने का हिंदीवाले मास्साब का अपना तरीका था। जिस लडके की ठुकाई करनी थी, वे उसी को बाहर बागड मे लगी मेहदी की एक सटी तोडकर लाने को कहते थे। जो लड़का समझ जाता था वह मेहंदी की बागड़ से होता हुआ सीधा घर की ओर बढ़ जाता था

तथा बीमारी का वहाना वनाकर चार-छह दिन बाद ही प्रकट होता था। जो नहीं समझ पाता था, अच्छी मोटी संटी तोड़कर लाता था और पिटता था। मास्साव ने हम दोनों को एक-एक संटी तोड़कर लाने को कहा। मकान मालिक का लड़का बाहर आया और मेहंदी की झाड़ियों में संटी तोड़ने का अभिनय करता हुआ सीधे घर की ओर बढ़ गया। मैंने संटी ले जाकर मास्साव को दी तथा स्पष्ट स्वीकार किया कि सर, मकान उसी का है, परंतु निबंध मैंने लिखा था, जिसको उसने ज्यों का त्यों टीप दिया है।

"इस बात का क्या प्रमाण है ?" मास्साव ने पूछा था।

"सर, अपराधी का घर भाग जाना।"

"ठीक है, कल उसकी ठुकाई करेंगे। और अगर तुम्हारी बात गलत हुई तो तुम्हारी ठुकाई होगी।"

मास्साव ने संटी रखी ली थी और मैं उस दिन रात भर चिंतित रहा था कि क्या पता किसमें ठुकाई पड़ती है।

मैंने अपनी मां से सारा किस्सा बयान किया था तो उसने कहा कि तेरे पिता जी से कहेंगे, वे अपने लिए एक मकान बनवा लें। अपना घर अपना घर होता है। उस रात मां और पिता जी में झगड़ा हुआ था। मां मकान बनवा लेने की जिद्द पर अड़ी थी तथा पिता जी कहते रहे थे कि स्थानांतरशील नौकरियों में साल भर का अनाज इकट्ठा खरीदने के, गाय-भैंस पालने के, खेती खरीदने के और मकान बनवाने के अनेक नुकसान हैं। कब आपका तबादला हो जाए और वे चीजें भारी पड़ जाएं, नहीं कहा जा सकता। पिता जी ने कुछ उदाहरण भी दिए थे कि कैसे उस गुप्ता ने दस बोरा गेहूं खरीदा था कि साल भर परिवार खाएगा और कैसे दूसरे ही दिन उसका तबादला हो गया था। सब बेचकर गया था। उनमें से दो बोरे हम लोगों ने भी आधी कीमत पर खरीदे थे।

"मकान किराए पर दिया जा सकता है।" मां ने कहा था। इसके बाद पिता जी ने किराए पर मकान देने के अनेक नुकसान बतलाए थे, जिनमें मकान की दीवारों में कीलें ठोकने से लेकर अंततः उसे किराएदार द्वारा हड़प लिए जाने तक का उल्लेख था। पिता जी ने कहा था कि मकान एक

खूंटा होता है जिससे उसका मालिक बकरी की तरह बँध जाता है। फिर वह जिस शहर मे मकान है, उसके इर्द-गिर्द कौवे की तरह मंडराने के लिए अभिशप्त होता है। वह आसपास ही तबादला चाहता है और इस बात को लेकर जगह-जगह गिड़गिड़ाने को मजबूर हो जाता है। उन्होंने कहा कि पहली गलती उन्होंने शादी करके की थी दूसरी बच्चे पैदा करके, अब तीसरी गलती वे मकान बनवा कर नहीं करना चाहते।

घर के झगड़ो मे अक्सर जीत पुरुष की होती है, क्योंकि वह शारीरिक रूप से भी विवाद निबटाने मे सक्षम होता है। जीत पिता जी की हुई थी, और उस रात हमारा मकान नही बना था।

कहते हैं, इतिहास अपने आपको दोहराता है। आज मेरा लड़का 'अपने घर' पर निबंध लिख रहा है। उधर मकान मालिक का लड़का भी जो मेरे लड़के के साथ पढ़ता है, अपने घर पर निबंध लिख रहा है। इन दोनों के मकान में फिर चार कमरे होंगे, फिर इनके बगीचो में बकरी घुसेगी और फिर इनके मकानो का एक ही नाम होगा। सोच रहा हूँ कुछ कर्ज वगैरह की जुगत बैठाकर, छोटा-सा ही सही, एक अदद मकान बनवा ही लूं। किराए के घरवाली खानदानी परंपरा कही तो टूटे।

कवियों के बारे में

कवियों के बारे में कहा गया है कि जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि, यानी जहाँ सूर्य भी प्रवेश नहीं कर सकता वहाँ कवि पहुँच जाता है। अपनी इसी सामर्थ्य के तहत रीतिकालीन कवि सात पहरों के पीछे कैद नायिका के स्नानागार तक पहुँच जाते थे और उनका कुछ नहीं बिगड़ता था—न कवि का कुछ बिगड़ता था, न नायिका का। वैसे भी उस जमाने के कवि काफी शरीफ हुआ करते थे तथा वे अपनी पहुँच का लाभ केवल कविता लिखने तक उठाते थे। वे देखे हुए दृश्य का नख-शिख वर्णन अपने आश्रयदाता राजा को सुनाते थे, अपना पुरस्कार लेते थे और अलग हो जाते थे। तभी से कहावत निकली कि कवि का काम केवल रास्ता बताना है तथा उस पर चलने न चलने का निर्णय लेना आपका काम है। कवियों को पुरस्कृत करने की प्रथा भी रीतिकाल से ही चली या उसके पहले या बाद से—यह शोध का विषय है।

मैंने कहीं पढ़ा था कि कवि, लता तथा स्त्री—इन तीनों की प्रतिभा तभी निखरती है, जब इन्हें किसी का संबल प्राप्त हो जाए। अपने जमाने की एक लड़की को जानता हूँ, जिसकी प्रतिभा विवाह के बाद इतनी विकसित हुई कि आज वह तेरह बच्चों की माँ है, अब वह काफी मोटी हो गई है तथा उसका पति कहता है कि पिछले बाईस-चौबीस सालों में ये तेरह बच्चे उस महिला में से यों निकल आए हैं जैसे मूलधन में से ब्याज निकल

जाता है। स्त्री के स्वास्थ्य की ओर इशारा करके उसने कहा था कि इस बीच मूलधन भी बढ़कर दो गुना-तीन गुना हो गया है तथा अब उसकी ओर कोई नजर उठाकर देखने की हिम्मत भी नहीं करता। स्वाभाविक है, धनवानों से नजर मिलाने मे लोग वैसे भी डरते हैं। वैसे यही लड़की जब स्वास्थ्य की इतनी धनी नहीं थी, लोग दूर-दूर से इसे देखने आते थे तथा देर तक घूर-घूरकर देखा करते थे। लड़की के भावी संबल के रूप में इसके माँ-बाप मुझे भी देखने आए थे, मगर मुझमें उन्हें कोई ऐसी संभावना नजर नहीं आई जिसमे कि उनकी कन्या की प्रतिभा पूरा विकास पा सके। लिहाजा उन्होंने मूंगफली के एक व्यापारी का लड़का ढूंढ़ लिया था। कहते हैं मूंगफली मे प्रोटीन बहुत होता है और उस प्रोटीन के प्रभाव का उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ।

पिछले दिनों मुझे एक कवि सम्मेलनी कवि मिले। बोले कि मकान की छत पड रही है और एक समूचा तिमंजिला मकान उन्होंने कविता की कमाई से बनवाया है। मैंने कहा कि मित्र, मैंने बड़े-बड़े शायरों के बारे में सुना है जो सारी जिंदगी कविता करने के बाद अपनी कब्र खुदवाने लायक पैसा भी नहीं जुटा पाए थे। तुमने यह कैसे कर लिया? उत्तर में उन्होंने कहा कि कवि-सम्मेलन का मंच जमीन से काफी ऊपर उठा हुआ होता है और उसकी आमदनी से जो मकान बनता है, वह मंच से थोड़ा-बहुत ऊँचा हो ही जाता है। कारण यह कि मंचीय कवि कविता के साथ-साथ कहीं पर नौकरी भी कर रहा होता है। उसने कहा कि कवि-सम्मेलनी कवि के लिए मामूली मकान तो क्या, एक समूचा ताजमहल खड़ा कर लेना असंभव नहीं है। हालांकि इस बात के कोई प्रमाण नहीं मिलते कि शाहजहाँ ने ताजमहल कवि-सम्मेलन की कमाई से बनवाया था, मगर फिर भी आज का कवि चाहे तो ऐसा कर सकता है। उसने कहा था कि महत्व 'मंच' का है। उदित उदयगिरि मच पर रघुवर बाल पतंग—यह लाइन सुनाकर वह बोला था कि उदयगिरि के 'मंच' पर चढकर ही रामचद्र सूर्य की तरह चमके थे। हालांकि वहाँ मे उन्होंने कोई कविता नहीं पढी थी। अतः महत्व कविता का या प्रतिभा का नहीं है, मंच का है। जीवन के जिस भी क्षेत्र मे आदमी मंच पर पहुँच जाता है,

पुजने लगता है।

उसने कहा कि सुनी जानेवाली कविता का पारिश्रमिक हमेशा से ज्यादा रहा है। उसने विहारी का उदाहरण दिया कि किस प्रकार राजा उन्हें एक दोहा सुनाने का पारिश्रमिक एक सोने की मुहर देता था। एक तोले की मुहर का मूल्य आज के हिसाब से पच्चीस सौ रुपए हुआ। यानी दो लाइनों का पारिश्रमिक प्रति पंक्ति साढ़े बारह सौ बैठा। उसने कहा कि इस बात की जानकारी उपलब्ध नहीं है कि राजा दोहे का कॉपीराइट भी खरीद लेता था या नहीं, अन्यथा विहारी उसी दोहे को दूसरे राजाओं को सुनाकर ढाई-ढाई हजार उनसे भी वसूल सकते थे। वैसे भी विहारी एक राजा के खूँटे से बंधने के बजाय थोड़ा गतिशील रहते तो ज्यादा कमा सकते थे।

जहाँ तक कवि-सम्मेलनों का सवाल है, उसने कहा कि इनमें प्रतिभा की कम, गतिशीलता की अधिक जरूरत होती है। औसतन एक व्यस्त कवि-सम्मेलनी कवि साल भर में उतनी रेल-यात्रा या बस-यात्रा कर लेता है, जितनी एक रेलवे ड्राइवर या लंबे रूट पर चलनेवाला बस कंडक्टर अपने समूचे सेवाकाल में भी नहीं कर पाता। बात असभव लग रही थी, पर उसने कहा कि ड्राइवर या कंडक्टर दिन में केवल आठ घंटा ड्यूटी करता है जबकि कवि-सम्मेलनी कवि चौबीस घंटे ड्यूटी पर रहता है। ड्राइवर-कंडक्टर साल में कुछ दिन छुट्टियाँ भी मनाते हैं, जबकि कवि के लिए रामकाज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम की हालत रहती है। गणेशोत्सव, दुर्गोत्सव आदि के समय अनेक संयोजकों को उधो तन नाहीं दस-बीस कहकर असमर्थता बतानी पड़ती है। उसने कहा कि कृष्ण भगवान में यह क्षमता थी कि वे सोलह हजार एक सौ आठ रूप एक साथ धर लेते थे। यदि द्वापर युग में कवि सम्मेलन हो रहे होते तो वे उत्सवों के टाइम पर एक रात में भारत भर में होनेवाले सोलह हजार एक सौ आठ कवि-सम्मेलन एक साथ कर सकते थे। उसने कहा कि कई बार उसे लगा है कि अगर वह कृष्ण भगवान होता तो अनेक रूप धर कर वह हापुड़, खुर्जा, बुलंदशहर, नांदेड़, धमतरी, हजारीबाग, शुजालपुर मंडी और सूरत के कवि-सम्मेलन एक साथ कर सकता था।

इतना कहकर वह फिर बिहारी पर आ गया था कि वह बिहारी को आदर्श कवि नहीं मानता। लगता है बिहारी सीधा आदमी था और सीधा आदमी कभी अच्छा कवि नहीं होता। प्रति पंक्ति इतनी आकर्षक पारिश्रमिक की दरों पर थोड़ा-सा भी समझदार आदमी राजा को रोज एक खंड-काव्य लिखकर सुनाता। दूसरी बात यह कि कवियों के लिए, फेरीवाले व्यवसायियों के लिए तथा पेशेवर स्त्रियों के लिए एक ठिए से बंधकर रहना घाटा पहुँचाता है। तीसरी बात यह कि किसी भी दरबार से बंध जाने पर उसी सुर में गाना पड़ता है, जिसमें कि दरबारी आर्केस्ट्रा बज रहा होता है। जैसे ही आपकी कविता के बोल उनकी धुन से मेल खाने बंद हुए, वे आपको धक्का मारकर बाहर कर देते हैं।

इसके बाद वह अपने तिमंजिले मकान की ओर बढ़ गया था। आदमी कवि सम्मेलनी जरूर था मगर काफी बातें कवि-सम्मेलन से हटकर कर गया था। उसकी इस बात से मैं सर्वाधिक प्रभावित हुआ कि जीवन के किसी भी क्षेत्र मे मच पर आने के लिए प्रतिभा की कोई खास जरूरत नहीं होती और एक मंच पर स्थापित हो जाने के बाद आदमी की पूजा निश्चित रूप से होने लगती है।

वाला, धर्मात्मा नं० 1 और नं० 2, तीनों ठहाका मारकर हंसते हैं।)

झलक दूसरी : दूसरे मास्टर की

[स्थान : मास्टर की खोली। समय : दिन के साढ़े बारह बजे। तापमान : पसीने छूट रहे हैं। वातावरण : खोली के बाहर हवा की लू और खोली के भीतर पसीने की वू। पात्र : मास्टर और एक बीमा एजेंट जमीन पर बोरा बिछाकर बैठे हैं।]

—बीमा कराया ?

—नहीं।

—कितने बच्चे हैं ?

—सात।

—सात ? सात क्यों ?

—क्या करूं। अब होने बंद हो गए।

—बीवी तो एक ही है ना ?

—हां, वह भी अब पूरी नहीं बची है।

—तो कितने का बीमा कर दूं ?

—बीमा नहीं करना।

—क्यों ?

—पैसे ही नहीं बचते। प्रीमियम कहां से भरूंगा ?

—फिर भी, सात बच्चों और इकलौती बीवी का आपके बाद…?

—मेरे 'जॉब' में कोई 'रिस्क' नहीं।

—कमाल है। पढ़ते-पढ़ते आप पागल हो जाएं, दिमाग की नस फट जाए।

—कैसे फटेगी ? मैंने पढ़ना छोड़ दिया है।

—लेकिन मास्टर का काम बगैर पढ़े नहीं चल सकता।

—चला लेते हैं।

—कैसे ?

—'ट्रेड सीक्रेट' बताए नही जाते।

—अच्छा, तो कितने का बीमा कर दूँ?

—कहा न, कि मेरे 'जॉब' मे कोई रिस्क नही।

—'रिस्क' नही। कमाल है! अभी-अभी एक मास्टर को नकल पकड़ने के अपराध में एक लड़के ने परीक्षा हॉल मे छुरा भोंक दिया।

—आपका ख्याल गलत है, लड़के ने सिर्फ जूता मारा था।

—जी आपका ख्याल गलत है। जूता किसी और मास्टर को मारा होगा। मैं जिसकी बात कर रहा हूँ, उसे छुरा भोंक दिया गया।

—फिर?

—फिर क्या, मास्टर टें बोल गया।

—यानी?

—यानी मर गया।

—बिल्कुल मर गया?

—जी हाँ, तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो गया। 'इट वाज एन इंस्टांटे-नियस डैथ।'

[मास्टर क्षण भर के लिए भौचक्का-सा हो जाता है।]

—तो फिर कितने का बीमा कर दूँ?

—कह दिया न, कि मेरे 'जॉब' में कोई 'रिस्क' नही।

—कमाल है! खुदा न खास्ता आपको किसी ने छुरा···

—कैसे भोंकेगा? मैं छुरा भुकवाने का काम नही करूँगा।

—अपना नैतिक दायित्व भी नही निबाहेंगे? जमाना आप पर थूकेगा।

—तो छुरा भुकवाना या जूता खाना नैतिक दायित्व है?

—मैंने यह कब कहा? ये तो नैतिक दायित्व निबाहने के परिणाम मात्र हैं।

—मुझमे यह नही होगा।

—पर आप पर भावी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है···आप कैसे गैरजिम्मेदारी की बात करते हैं?

—अभी आपने फरमाया कि एक नैतिकता के दावेदार को छु-

भोंक दिया गया।

—जी हाँ।

—उसके नाम पर कोई रोनेवाला है ?

—जी, उसकी बीवी दहाड़ मार-मारकर रो रही है।

—और ?

—और उसके बच्चे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं···

—हूँ। इसके अलावा कोई और ?

—जी, और कोई क्यों रोने चला ?

—तो आओ बेचारे के नाम पर हम रो लें।

—लेकिन रोने के बाद बीमा करवाना पड़ेगा ?

—पहले नैतिकता की मौत पर तो रो लें। फिर बीमे के बारे में सोचेंगे।

—सोचेंगे ? यानी रो लेने के बाद भी केवल सोचेंगे ही। नहीं-नहीं (भावुक हो आता है) तुम बीमा करवा लो मास्टर ! तुम पर भावी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है। तुम अपना दायित्व निबाहोगे। नकल पकड़ना तुम्हारा फर्ज है, तुम उसे करोगे। तुम अनैतिक काम नहीं होने दोगे मास्टर (स्वर दयनीय हो आता है) और···और उधर लड़के छुरा लेकर घूम रहे हैं मास्टर ! वे···वे तुम्हें छुरा जरूर भोंकेंगे मास्टर ! तुम टें बोल जाओगे मास्टर ! 'यस इट विल बी ए केस ऑफ इंस्टांटेनियस डेथ।' और···और तुम्हारे सात-सात अनाथ, अबोध, मासूम बच्चों और तुम्हारी इकलौती, निरीह, बेबस, बेसहारा, अबला पत्नी का तुम्हारे बाद क्या होगा ? सोचो मास्टर, जरा तो सोचो···मेरे भी सात बच्चे हैं, इकलौती बीवी है, कुछ तो सोचो, तुम्हें बीमा करवाना ही होगा मास्टर !

[बीमा एजेंट फूट-फूटकर रो पड़ता है। मुद्रा से लगता है। वह अपने ही दुख से दुखी है। मास्टर उसके गले लगकर जोर-जोर से रोने लगता है। दोनों काफी देर तक रोते रहते हैं। फिर बीमा एजेंट अपने कागज, फाइल इत्यादि बटोरकर चुपचाप खोली से बाहर निकल जाता है।]

झलक तीसरी : तीसरे मास्टर की

[मास्टर कमरे में उकड़ूँ बैठा है। चारों ओर परीक्षा की कॉपियों का अबार लगा है। मास्टर पन्ने गिन-गिनकर नंबर दे रहा है। पास ही उसकी मैट्रिक फेल बीवी और नवीं कक्षा का विद्यार्थी उसका बड़ा लड़का बैठे हैं सबके सब कॉपियाँ जाँच रहे हैं। कॉपियाँ इंटर, बी. ए. से लेकर एम ए. तक की हैं।]

[दरवाजे पर बगैर दस्तक की औपचारिकता निबाहे, दो साए उभरते हैं। एक बड़ा आदमी है और दूसरा फिल्मी नायकों की-सी वेशभूषा में। बीस-बाईस का नवयुवक।]

—आ सकते हैं ?

—अभ्यागत का स्वागत है।

—क्या हो रहा है ?

—(आलू छील रहा हूँ—मास्टर कहना चाहता था लेकिन बोला) जी, कॉपी जाँच रहा हूँ श्रीमान !

—किस क्लास की ?

—जी, बी. ए. की।

—इन्हें जानते हो ? (बड़े आदमी ने लड़के की ओर इंगित किया।)

—(हर नत्थुखैरे को जानना आवश्यक तो नहीं—मास्टर कहना चाहता था लेकिन विनम्रता से बोला) जी, इससे पहले कभी दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

—आप बी. ए. में बैठे हैं।

—मैं धन्य हुआ आपके दर्शन कर। कहिए क्या सेवा करूँ ?

—जरा, इनकी कॉपी निकालिए।

—और ये कॉपियाँ भी।

[लड़के ने कोई आठ-दस रोल नंबरों की लिस्ट थमा दी।]

—(ये क्या आपके बाप की कॉपियाँ हैं ? मास्टर कहना चाहता था लेकिन फिर विनम्रता से बोला) ये शायद आपके मित्रों की कॉपियाँ होंगी ?

—जी हाँ, लँगोटियों की हैं।

—अच्छा, मैं समझा था फुलपैंटियों की हैं। (मास्टर बुदबुदाया, फिर बोला) लेकिन नंबर बढ़ाना अनैतिक कार्य है।

—बढ़ा भी दीजिए, क्या जाता है? (सामनीति)

—यह अनैतिक कार्य है।

—आपको एक कॉपी जाँचने का कितना मिलता है?

—एक रुपया।

—हमसे सौ रुपए लो, मगर नंबर बढ़ाओ। (दामनीति)

—नहीं, यह कार्य अनैतिक है।

—तुम्हें मालूम है कि यदि यह न हुआ तो बीच चौराहे पर तुम्हारी चमड़ी उधड़ सकती है। कॉलेज का चेयरमैन मेरा मामा है। तुम्हारी नौकरी जा सकती है। तुम दाने-दाने को मोहताज हो सकते हो। तुम्हारे बच्चे टीन का कटोरा लेकर दर-दर की भीख माँगने को फिर सकते हैं। (दंडनीति)

—जान चली जाए लेकिन अनैतिक काम नहीं करूँगा। बोटी-बोटी कट जाए, खून का कतरा-कतरा बह जाए, लेकिन यह मुझसे नहीं होगा।

[बड़े आदमी ने पैंतरा बदला। अब वह भेदनीति का अनुसरण कर रहा था।]

—अच्छा तुमने छगन के नंबर बढ़ाए थे न?

—कौन कहता है? सबूत?

—सबूत दूँगा। और तुम छात्रा कृष्णा बाई को परीक्षाहॉल में चिट सप्लाई करते थे न?

—सबूत?

—सबूत दूँगा, अच्छा, छात्रा रामकली लक्ष्मी बाई से तुम्हारा इश्क काफी दिनों तक चलता रहा था न?

[मास्टर की बीवी और लड़का उठकर अंदर चले जाते हैं।]

—और रामकली बाई के गालों को सहलाकर बालों में फूल खोंसते समय छात्र चंगीलाल और मंगीलाल ने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ा था न?

[मास्टर साष्टांग दंडवत की मुद्रा में बड़े आदमी के समक्ष गिर

जाता है।]

—बस-बस दयानिधान, अब और मत खोलो।

– तो फिर कॉपी खोलो।

[मास्टर ने रोल नंबर ले लिए और कॉपियाँ खोलने लगा।]

— अरे, ये तो हिंदी की कॉपियाँ हैं। ये मेरे पास नही हैं।

—पर हिंदी तो आप ही पढ़ाते हैं न ?

—हाँ, पर कॉपियाँ अंग्रेजी की जाँच रहा हूँ।

—भला क्यों ?

—हिंदी की 'एग्जामिनरशिप' नही मिली।

—*और अंग्रेजी की मिल गई ?*

—जी, मैंने अंग्रेजी भी पढी है।

—(इसके बाद मास्टर नरो वा: कुंजरो वा की स्टाइल में धीरे से बुदबुदाया) दरअसल फूफा जी अंग्रेजी के हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट हैं।

[मास्टर जमीन के चार अगुल ऊपर तकिए पर बैठा था। झूठ बोलकर तकिया एक ओर खिसका दिया और जमीन पर आ टिका।]

—कमाल है ! पढ़ाते कुछ हैं, जाँचते कुछ हैं !

—हैं हैं हैं··· (मास्टर घिघियाया) यही तो एक जरिया है धन प्राप्ति का। इस 'जॉब' मे रिश्वत, घूसखोरी नही चलती ना। बडा 'आनेस्ट' जॉब है।

[दोनों उठकर चले जाते हैं। मास्टर फिर पन्ने गिन-गिनकर नंबर देने लगता है।]

बैल, बैलगाड़ी और साँड़

सार्वजनिक जीवन में गुंडों का महत्त्व निश्चित रूप से है। अपने जीवन के 45 वर्षों के अनुभव से मैं बता सकता हूँ कि यदि जीवन से गुंडा उठा लिया जाए तो कुछ नहीं बचेगा। जैसे पैंतालीस में से पैंतालीस घटा दिया जाएँ तो कुछ नहीं बचता। अपन केवल गर्भस्थ शिशु भर बचते हैं और वहाँ गुंडा की कोई गुंजाइश नहीं। वैसे एक पैदायशी गुंडे का कहना है कि हाथ-पैर वह वहाँ भी मारा करता था। और जब पैदा हुआ था तो पैरों की तरफ से पैदा हुआ था, चूँकि दुनिया में आते समय उसके पैर पहले बाहर आए थे, वह जीवन में सिर के बजाय पैरों से ही अधिक काम लेता है। जहाँ दिमाग और सिर से काम लेने की बात होती है वहाँ भी वह लात और जूतों से काम लेता है। और उसका काम हो जाता है। अपने पैंतालीस साल के अनुभवों में एक अनुभव यह भी मुझे हुआ है कि सिर और दिमाग के बजाय लात और जूतों से जल्दी काम हो जाता है। अब यह एक अलग बात है कि मेरे ये दोनों पुर्जे यानी लात और जूते हमेशा कमजोर रहें।

समाज को गुंडे से अलग कर दिया जाए तो समाज नहीं बचेगा और गुंडे को समाज से अलग कर दिया जाए तो वह गुंडा नहीं बचेगा। अपने आपसे कैसे गुंडागर्दी करेगा? उधर समाज वह जिसमें शरीफ, बदमाश, चोर, जुआरी, संन्यासी, सद्गृहस्थ, पतिव्रता, वेश्या आदि सभी हों। इनमें गुंडों का होना भी जरूरी होता है। इन सबसे मिलकर समाज बनता है।

अतः गुंडा समाज के लिए वैसे ही जरूरी है जैसे गुठली आम के लिए जरूरी होती है। बिना गुठली के आम का अस्तित्व कठिन है। गुठली गुंडा, छिलका व्यवस्था और बीच का गूदा जनता। इस गूदे को गुठली गड़ती है मगर ऊपरी छिलका उसे गुठली से मुक्त नहीं होने देता। छिलका मजबूर करता है गूदे को कि वह गुठली को अपनी गोद में बैठाए रखे।

कुछ आमों में जिनमें गूदे का महत्त्व कम होता है, गुठली काफी बड़ी होती है और उसका छिलके से इतना आत्मीय संबंध होता है कि बीच में गूदे या रस के लिए बहुत कम गुंजाइश होती है। ऐसे में आम के पेड़ का सारा रस या कि जीवन-तत्त्व गुठली और छिलका मिलकर ही जीम जाते हैं और गूदे के लिए कुछ नहीं बचता।

यदि गूदा कमजोर हो तो गुठली बड़ी हो जाती है और वह छिलके से सीधा संबंध स्थापित कर लेती है। यदि संबंधों की यह प्रगाढ़ता लंबे समय तक चलने दी जाए तथा शर्म और हया की रही-सही आर्द्रता भी सूख जाने दी जाए तो छिलका-गुठली परस्पर मिलकर एकाकार हो जाते हैं और फिर छिलके को गुठली से और गुठली को छिलके से अलग करना मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार के सूखे आम की सहायता से आप किसी को भी सिर फोड़ सकते हैं। आहत कर सकते हैं। एक आदमी कह रहा था कि उसके सिर पर इस प्रकार का सूखा आम एक बार गिर चुका है, और उसकी चोट से उठा गूमड़ आज तक ठीक नहीं हो पा रहा है।

समाज जैसे नेता को बर्दाश्त करता है, अफसर को बर्दाश्त करता है, पुलिस को बर्दाश्त करता है, चोरों, जेबकतरों, डाकुओं को बर्दाश्त करता है, कवियों, लेखकों, संपादकों और समीक्षकों को बर्दाश्त करता है, उसी तरह वह गुंडों को बर्दाश्त करता है। जैसे नेता, अफसर, पुलिस, चोर, जेबकतरे, डाकू, कवि, लेखक और समीक्षक बनाए नहीं जाते, स्वयंमेव प्रयत्न करके बनते हैं, उसी तरह गुंडा भी अपने स्वयं के प्रयत्न एवं प्रतिभा से गुंडा बनता है। जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन भी जरूरी होता है। यदि प्रयत्न और प्रतिभा अपने पास हों तो प्रोत्साहन तो कहीं से भी मिल जाता है। समाज के अनेक तबकों को अनेक स्तरों पर गुंडों की सेवाओं की जरूरत पड़ती है और 'समानधर्मा समानधर्मा को आकृष्ट करता है'

के सिद्धांत के अनुसार गुंडे अपने चाहनेवालों की ओर खिचते हैं, और चाहनेवाले गुंडों की ओर खिचते हैं। अनेक नेताओं, अफसरों, पुलिसवालों चोरों, जेबकतरों, डाकुओं, कवियों, लेखकों और समीक्षकों को भी गुंडों की जरूरत होती है और अनेक गुंडों को भी नेताओं, अफसरों, पुलिसवालों, चोरों, जेबकतरों, डाकुओं, कवियों, लेखकों और समीक्षकों की जरूरत होती है। वे परस्पर एक-दूसरे के काम आते हैं। फिर दोनों मिलकर आम जनता के काम आते हैं और इस चक्कर में काफी जनता काम आती है।

गुंडों के स्कूल नहीं होते। वह आत्मदीक्षित और आत्मशिक्षित होता है। आपने देखा होगा, गाय के जो बछड़े स्कूल-कॉलेजों की बैलगाड़ियों में जुत जाते हैं, वे आगे चलकर बैल बनते हैं जो कि बधिया कहलाता है। जो छुट्टा घूमते हैं वे साँड़ का दर्जा पाते हैं और पनिहारिन औरतों, सब्जी मंडी के दूकानदारों तथा फुटपाथी गल्ला व्यापारियो से लेकर बंद कारों में चलनेवाले बड़े आदमी तक इनसे घबराते हैं। मैंने एक स्कूल दीक्षित बछड़े से जब यह कहा तो उसने सहमति प्रगट की। उसने कहा कि वह स्कूल गया, फिर कॉलेज गया, फिर प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठा। सब जगह अव्वल आया, फिर अफसर बना। फिर सरकारी दफ्तर की बैलगाड़ी में जुता और आज अपने क्षेत्र का प्रख्यात बैल गिना जाता है।

इस आदमी ने कहा कि बधिया बनने पर आप बैल का दर्जा पाते हैं। नियमित रातब, खली, चारा, भूसा पाते हैं। रहने को सुरक्षित गौशाला पाते हैं। गले में माला की तरह बंधी हुई चमचमाती जंजीर पाते हैं। खुरों और सींगोंके सीमित उपयोग की छूट भी आपको रहती है तथा अपने बदन में खुजली चलने पर इनसे खुजला सकते हैं। यदि सींगों और खुरों में खुजली चले तो अपने मातहतों पर तथा आम जनता के उन लोगों पर जिन्हें किसी साँड़ का संरक्षण प्राप्त नहीं है, इस्तेमाल कर सींगों-खुरों की खुजली मिटा सकते हैं।

गुंडों के बारे में अपने अनुभव बताते हुए इस आदमी ने कहा कि गुंडा साँड़ होता है। वह चलती बलगाडी में टक्कर मारने की क्षमता रखता है और इसीलिए बैलगाड़ीवाले उससे अक्सर समझौता करने का प्रयास करते हैं। बैलगाड़ीवालों को अपने से डरता देख, वह अनेक बार बैल-

गाड़ी पर लद जाने का प्रयास भी करता है तथा कई बार सफल भी होता है। उसने कहा कि उसके साथ ही स्कूल में एक लड़का पढ़ता था। यह आदमी स्कूल पास कर कॉलेज में गया था फिर कॉलेज पास कर नौकरी में आ गया था। तब तक वह लड़का स्कूल में ही पढ़ता रहा था। यह नौकरी में सीनियर होता रहा था। उसके बाद वह कॉलेज में आ गया तथा वहाँ काफी समय तक सीनियर होता रहा। अपने जूनियरों को अपने आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर दिए तथा खुद उनमें हमेशा पीछे रहकर त्याग, बलिदान और आदर्श के कीर्तिमान स्थापित किए। कॉलेज के प्रोफेसरों के कॉलरों, कमीजों और कपड़ों को अनेक बार आत्मीयता से स्पर्श किया। उनकी माताओं, भगिनियों का समुचित आदर के साथ अनेक बार सार्वजनिक उल्लेख किया, और इस प्रकार पर्याप्त पुण्य, प्रतिष्ठा और परमार्थ अर्जित कर वह गुंडा बना।

अर्थशास्त्र का सिद्धांत है—उस आदमी ने कहा—जिस चीज की माँग बढ़ जाती है उसकी कीमत भी बढ़ती है। उन दिनों सार्वजनिक जीवन में गुंडों की माँग बढ़ी हुई थी और गुंडे मिल नहीं रहे थे। जो थोड़े-बहुत गुंडे उपलब्ध थे उन्होंने अपने भाव बढ़ा दिए थे। स्कूल-कॉलेज भी माँग के अनुरूप गुंडे पैदा नहीं कर रहे थे। शिक्षा व्यवस्था के दोष उजागर हो रहे थे। जिस चीज की जरूरत थी उसी को शिक्षा संस्थाएँ पैदा करके नहीं दे पा रही थीं। लिहाजा आम जनता में से गुंडे चुने गए। यह स्वीकार किया गया कि पढ़े-लिखे गुंडे से बेपढ़ा गुंडा ज्यादा गुंडा होता है। अत. अधिक उपयोगी है।

उस आदमी ने कहा कि उसका वह सहपाठी लड़का चूँकि पढ़ने-लिखने के बाद भी बिना पढ़ा-लिखा, अधिक उपयोगी साबित हुआ और उसे उससे भी बड़े गुंडों ने प्रोत्साहित करके नेता बनवा दिया। वह सत्ता में आया और सत्ता वह गंगा है जो आपके सारे पाप धो देती है तथा आदमी उसमें डुबकी लगाते ही निर्मल, पवित्र और स्वच्छ हो जाता है। गुंडों के इस प्रकार स्वच्छ, पवित्र और पूज्य हो जाने से उधर फिर समाज में गुंडों की कमी हो जाती है और उसके लिए फिर स्कूल-कॉलेजों के दरवाजे खट-खटाने पड़ते हैं तथा समाज के अन्य तबकों में प्रतिभाशालियों को ढूँढना

खखोड़ना पड़ता है।

मैंने कहा कि इसमें असहज क्या है ? साथ ही यह कहा, मित्र, तुम्हारी बात में पीड़ा झलक रही है। तुम इन बातों से दुखी क्यों हो ? तुम शायद जनता के दुख से दुखी हो तो उसने कहा कि वह अफसर है और अफसर जनता के दुख से अक्सर दुखी नहीं होता। उसका दुख व्यक्तिगत है। उसने बताया कि उसके स्कूल का सहपाठी वह उपरोक्त वर्णित गुंडा अपनी सवानशीनी के दौरान एक बार उसके सिर पर आकर बैठ गया था। पूरे पाँच साल बैठा रहा। जनता मुझे सर कहती थी, मैं उसे सर कहता था और उसके सामने सिर झुकाता था। मैं बैलगाड़ी में जुता हुआ गाड़ी खींचता था। और वह बैलगाड़ी पर लदा हुआ गाड़ी हाँकता था। स्कूल के दिनों में मैं उसे हिकारत से देखता था, अब वह मुझे हिकारत से देख रहा था तथा बीच-बीच में चाबुक भी खींच देता था, इस बात को लेकर कि मैं ठीक रास्ते नहीं चल रहा, जबकि रास्ता उसे खुद भी नहीं मालूम था।

उसने कहा कि बैल और साँड़ में साँड़ का कैरियर ज्यादा अच्छा है। साँड़ बनने में जीवन के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों में मजा रहता है जबकि बैल के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों कष्टकर होते हैं। उसने मुझे साँड़ बनने की सलाह दी थी। मगर मैं चालीस पार कर चुका था और यह जीवन का न पूर्वार्द्ध था न उत्तरार्द्ध।

फिल्म का निर्माण फिर-फिर

फिल्म बनाना कला है या विज्ञान, इधर-उधर से आइडिए चुराकर भानुमती का कुनबा जुटाना है या कि मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन, नकल-पट्टी है या अक्लमंदी, संप्रेषण का प्रयास या दर्शक को बेवकूफ बनाने की एक ईमानदार कोशिश—या यह सबकुछ सम्मिलित—इस चक्कर में मैं नहीं पड़ना चाहता। मगर एक फिल्म है जो मैं बनाना चाहता हूँ। जाहिर है कि यह फिल्म बनाने की सत्प्रेरणा मुझे दस-बीस देशी-विदेशी फिल्में देखने के बाद मिली है।

जिस प्रकार कुछ लोग उपन्यास लिखने के पहले उसका शीर्षक रख लेते हैं और बाद में उस शीर्षक के अनुसार उपन्यास लिखते हैं, ठीक उसी प्रकार इस फिल्म का शीर्षक मैं पहले ही रख चुका हूँ—'डूबती बस'। डूबती बस इसलिए कि मुझे एक बस को फिल्म में डुबाना है और त्रासदी दिखाना है। और यह त्रासदी इसलिए दिखाना है कि त्रासदी दिखाने का फिलहाल फैशन है। दूसरे मैं लीक पर रहते हुए कुछ लीक से हटकर भी काम करना चाहता हूँ इसलिए आग, हवा, पानी की जो अन्य त्रासदियाँ दिखाई जा चुकी हैं, उनसे हटकर एक भिन्न किस्म की त्रासदी अपनी फिल्म में दिखाऊँगा। अब आप यहीं से चिंतित न हो जाएँ कि फिल्म सीरियस होगी, मैं त्रासदी तो बाद में दिखाऊँगा उस त्रासदी के पहले आपको बहुत कुछ और भी दिखाऊँगा—वह सब जो आप एक

आदर्श भारतीय फिल्म में देखना चाहते हैं और जिसके विना आपको लगता है कि आपका पैसा पानी में गया। जनाव, मैं अपनी वस को पानी में जाने दूंगा—आपके पैसे को नहीं।

तो वस पानी में डूवेगी। इसके लिए वरसात का मौसम दिखाना पड़ेगा। मगर यह जरूरी नहीं। सारी शूटिंग वरसात में हो तो फिल्म में एकरसता आ जाएगी। लिहाजा फिल्म गर्मी के मौसम से शुरू होगी। यह वस कश्मीर के श्रीनगर के वस अड्डे पर खड़ी है। आस-पास सुंदर स्त्रियाँ खड़ी हैं। कुछ विल्डिंगें खड़ी हैं तथा कैमरा थोड़ा दाएँ-वाएँ घुमा कर दिखाया जाएगा कि दूर पृष्ठभूमि में हिमालय की सुंदर पहाड़ियाँ खड़ी हैं। अव फिल्म शुरू होती है और फिल्म शुरू होते ही वस चलने लगती है। 'विग-निंग, विग-निग' किस्म के संगीत की ध्वनि शुरू होती हैं। वस में सवारियाँ वत्तीस-चौंतीस हैं। सोलह-सत्रह औरतें तथा सोलह-सत्रह आदमी। दो लोग इनके अलावा इस वस में हैं, जो ड्राइवर और कंडक्टर हैं। इनमें ड्राइवर को आदमी तथा कंडक्टर को औरत रखा जा सकता है, ताकि इनमें आपस में दो-एक प्रेमगीत फिल्माए जा सकें तथा जव वस की सवारियाँ किसी वस स्टैंड पर इधर-उधर घूमने-फिरने जाती हैं तव एकाध सेक्स-युक्त मिलनदृश्य डाला जा सके, जिसकी शूटिंग वस की पिछली सीट पर हो और एकाध सेक्सी गाना 'हाय, हम-तुम। हाय, हम-तुम' जैसा हो जाए। वस की वाकी सवारियाँ इस स्त्री कंडक्टर को न छेड़ें इसके लिए इसे पुरुषों-जैसे कपड़े पहनाकर यथा सरदार जी के रूप में भी रखा ज

र नाच-गाना सरकस का काम है और उसमें जोखिम है तो जनाब, फिल्म नायक डेढ सौ फुट ऊँची पहाड़ी से कूदता है और उसमें कोई जोखिम नहीं होता। हेलिकॉप्टर से लटका दोनो हाथ छोडकर गाना गाता चलता है, उसमें कोई जोखिम नहीं होता। लिहाजा मेरे कलाकार चलती बस पर भांगड़ा नाचते चलेंगे।

बस में कुछ वृद्ध दपंति भी होंगे। यह बस पहलगाम जाकर रुक जाएगी तथा वृद्ध दंपति अमरनाथ की यात्रा पर रवाना हो जाएँगे। वहाँ हिम-शिवलिंग के सामने 'तू ही है सारे जग का मालिक ओ शिवशंकर' जैसा एक घंटे-घड़ियाल की ध्वनिवाला भनभनाता भजन होगा। बीच-बीच में नायिका को भी केवल साडी पहने—चौडे बार्डर की पारदर्शी सिल्क की—हाथ में पानी का कलश लिए दिखाया जाएगा। यह नायिका चूंकि ताजा नहाकर आई है, ब्लाउज नहीं पहने होगी। जूही के फूलों की एक माला वह बाजूबंद की जगह हाथ में बाँधे होगी तथा दूसरी गले में डाले होगी। इसकी पलकें नीचे की ओर झुकी होंगी जिन्हें वह कभी-कभी ऊपर उठाएगी और अपनी आंखों की बड़ी-बडी पुतलियाँ दिखाएगी दर्शकों को। फिल्म मे लगेगा कि वह शिवशंकर की मूर्ति को देख रही है श्रद्धाभक्ति भाव से। वह अपने होंठों को थोडा-सा खोलकर दाँत भी दिखाती चलेगी, गाने की आवाज के साथ-साथ। यदि यह दक्षिण भारत से आई हुई ताजा अभिनेत्री हुई तो इसके होंठों के हिलने और पार्श्व-गायिका द्वारा गाए जा रहे गाने के शब्दो के उच्चारण का फर्क स्पष्ट देखा जा सकेगा। अगर गाने की अंतिम पंक्ति 'पहुँच जाऊँगी' है तो इसके होंठ 'पहुँच' शब्द के उच्चारण पर ही बंद हो जाएँगे और 'जाऊँगी' शब्द बाद मे सुनाई देगा। लोगों लगेगा कि नायिका मुँह बंद करके भी गा सकती है और हम-आपसे वह इसलिए श्रेष्ठ है कि हम-आप मुँह बंद करके 'कूँ' की आवाज निकाल सकते हैं, 'जाऊँगी' का उच्चारण नहीं कर सकते।

आप पूछ सकते हैं कि यह झमट है तो कोई उत्तर-भारतीय नायिका क्यों नहीं लेते? कारण दो हैं- एक तो ये पैसा अधिक माँगती हैं। दूसरे इनमें से अधिकांश 'जुडी-ताप' का विज्ञापन होती हैं। अगर चटकनी हड्डो, टूटनी हड्डो, झाँकती हड्डो या सिर्फ हड्डी-जैसी कोई फिल्म बनानी

मगर मैंने कहा कि वह बुड्ढा नहीं है और उसके मुँह से यह डायलाग अच्छा नहीं लगेगा। तब उसने कहा कि वह 'मैं कुत्ता हूँ। नीच हूँ। पामर हूँ' वाला डायलाग बोलेगा। बहुत मुश्किल से वह माना कि हिंदी फिल्म का नायक कभी कुत्ता, नीच या पामर नहीं हो सकता। ज्यादा से ज्यादा कैदी, डाकू, चोर या जेबकतरा चल जाएगा।

बस चंद मारवाड़ के सीन, नायक-खलनायक की भाग-दौड़, नायिका के एक-दो भजन, क्लब में कन्याओं के दो-एक नृत्य और इस सबके बाद बस डूबने की ओर अग्रसर होना। सोच रहा हूँ बस को थार मरुस्थल में ले जाकर डुबाऊँ। अब आप यह न कहें कि थार मरुस्थल में तो पानी नहीं

वीमारी

एक डॉक्टर ने मलेरिया बताया था, दूसरे ने अंटिकेरिया। यह भी बताया कि इन दोनों रोगो के लक्षण एक-जैसे है और ये एक-दूसरे के भाई है तथा इनके रोगाणुओ मे परस्पर कौटुंबिक संबंध होता है। बाद को चलकर लोगो ने मुझे बताया कि विभिन्न डॉक्टरों मे भी परस्पर कौटुंबिक संबंध होता है तथा ये भी एक-दूसरे के भाई होते हैं, और इनमें से अधिकांश के लक्षण भी लगभग एक-जैसे होते हैं।

बहरहाल, वीमारी के दौरान इलाज मैंने दोनों डॉक्टरों से करवाया। एक डॉक्टर ने मलेरिया का इलाज किया, दूसरे ने अंटिकेरिया का किया। जिसने मलेरिया बतलाया था उसने अंटिकेरिया का किया और जिसने अंटिकेरिया बतलाया था उसने मलेरिया का किया (उन्होने एक-दूसरे की पर्ची देख ली थी और संभवतः अपने निर्णय बदल दिए थे।) मगर कुल मिलाकर एक निष्कर्ष पर वे कायम रहे कि मरीज के पेट मे पचास-पचास ग्राम गोली मलेरिया और अंटिकेरिया की पहुँचाना ही है।

हीगेल ने लिखा है कि बाद और प्रतिवाद की टकराहट से संवाद पैदा होता है। मलेरिया और अंटिकेरिया की टकराहट से संभवतः क्यूटीकेरिया हुआ और उसकी वजह से पुराने बुखार तथा बेचैनी के साथ-साथ, पेट मे एक नए किस्म के अलौकिक आनंद की सृष्टि हुई जिसने उठना-बैठना मुश्किल कर दिया। आँतों की बरछी भिदने का मजा

मगर मैंने कहा कि वह बुड्ढा नहीं है और उसके मुँह से यह डायलाग अच्छा नहीं लगेगा। तब उसने कहा कि वह 'मैं कुत्ता हूँ। नीच हूँ। पामर हूँ' वाला डायलाग बोलेगा। बहुत मुश्किल से वह माना कि हिंदी फिल्म का नायक कभी कुत्ता, नीच या पामर नहीं हो सकता। ज्यादा से ज्यादा कैदी, डाकू, चोर या जेबकतरा चल जाएगा।

बस चंद मारधाड़ के सीन, नायक-खलनायक की भाग-दौड़, नायिका के एक-दो भजन, क्लब में कन्याओं के दो-एक नृत्य और इस सबके बाद बस डूबने की ओर अग्रसर होगा। सोच रहा हूँ बस को थार मरुस्थल में ले जाकर डुबाऊँ। अब आप यह न कहें कि थार मरुस्थल में तो पानी नहीं है, बस कैसे डूबेगी? तो जनाब बस तो स्टूडियो में डूबेगी। और जो बस डूबेगी वह खिलौना बस होगी जो कि एक चुल्लू भर पानी में भी डूब सकती है। इसके अलावा हर दर्शक को थोड़े ही पता होगा कि थार मरुस्थल में पानी नहीं है। जिन दर्शकों को पता होगा वे भी आश्चर्य नहीं करेंगे, बल्कि अपनी खोपड़ी खुजलाकर समझने की कोशिश करेंगे कि फिल्मकार कोई नई चीज कह रहा है जो उनकी समझ में नहीं आ रही है।

अब डूबने का सीन! उतना ही खतरनाक जितना कि होना चाहिए। कुछ विदेशी फिल्मों मे मारे हुए सीन ज्यों के त्यों। मगर उसके साथ भारतीय मौलिकता का पुट। बस के डूबने पर मर्द-मर्द बस के अंदर ही फँसे रह जाएँगे। औरतें जिंदा निकल आएँगी अपने कपड़ों की समस्त अस्त-व्यस्तता के साथ और पानी में दूर तक बहती चली जाएँगी। फिर वे जब गीले कपड़ों मे पानी से बाहर निकलेंगी तो देर तक कैमरा उनको दिखाता रहेगा। अंत में 'डूबती बस, डूबती बस, डूबती बस' नामक एक गाना कोरस में होगा और आसपास के गाँवों से भागकर आए हुए ग्रामीणों के जत्थे, डूबती बस को खींचकर पानी से बाहर निकालेंगे। हालाँकि बस काफी देर पानी में डूबी रही है मगर उसकी सारी सवारियाँ जिंदा निकलेंगी। नायक बस से बाहर निकलकर तत्काल नायिका का हाथ पकड़ेगा और 'फिर मिलन हुआ आकाश के तले। चाँद के तले अपन मिले' जैसा एक गाना गाता हुआ नायिका को साथ लेकर दूर दौड़ता हुआ निकल जाएगा। इसके बाद फिल्म समाप्त हो जाएगी।

बीमारी

एक डॉक्टर ने मलेरिया बताया था, दूसरे ने अर्टिकेरिया। यह भी बताया कि इन दोनों रोगों के लक्षण एक-जैसे हैं और ये एक-दूसरे के भाई हैं तथा इनके रोगाणुओं में परस्पर कौटुंबिक संबंध होता है। बाद को चमकर लोगों ने मुझे बताया कि विभिन्न डॉक्टरों में भी परस्पर कौटुंबिक संबंध होता है तथा ये भी एक-दूसरे के भाई होते हैं, और इनमें से अधिकांश के लक्षण भी लगभग एक-जैसे होते हैं।

बहरहाल, बीमारी के दौरान इलाज मैंने दोनों डॉक्टरों से करवाया। एक डॉक्टर ने मलेरिया का इलाज किया, दूसरे ने अर्टिकेरिया का किया। जिसने मलेरिया बतलाया था उसने अर्टिकेरिया का किया और जिसने अर्टिकेरिया बतलाया था उसने मलेरिया का किया (उन्होंने एक-दूसरे की पर्ची देख ली थी और संभवतः अपने निर्णय बदल दिए थे।) मगर कुल मिलाकर एक निष्कर्ष पर वे कायम रहे कि मरीज के पेट में पचास-पचास ग्राम गोली मलेरिया और अर्टिकेरिया की पहुँचाना ही है।

हीगेल ने लिखा है कि वाद और प्रतिवाद की टकराहट से संवाद पैदा होता है। मलेरिया और अर्टिकेरिया की टकराहट से संभवतः क्यूटीकेरिया हुआ और उसकी वजह से पुराने बुखार तथा बेचैनी के साथ-साथ, पेट में एक नए किस्म के अलौकिक आनंद की सृष्टि हुई जिसने उठना-बैठना मुश्किल कर दिया। आँतों की बरछी भिदने का मजा

आता था तथा लगता था कि पेट के अंदर फुटबाल के आकार का दुखता हुआ गूमड़ उठ आया है जिस पर कोई लगातार हथौड़े से चोट कर रहा ।

ऐसी हालत में किसी तीसरे डॉक्टर की मदद लेना सीधे ब्रह्मानंद की स्थिति में पहुँचना था । लिहाजा तय यह किया कि अब कुछ मत करो, चुपचाप पड़े रहो । बेरुखी दिखाने से मेहमान तक जल्दी चल देते हैं तो ये तो मामूली रोगाणु हैं ।

देखनेवाले, हालचाल पूछनेवाले आते थे और कहते थे कि यह मौसम ही खराब है । क्वार का मौसम होता ही है बीमारियों का और इसमें तनिक एहतियात से रहना चाहिए । मेरे रिश्ते के एक बुजुर्ग भी यही कहते थे । मुझे याद है जब मैं छोटा था, वे बुजुर्ग क्वार का मौसम आते ही खटिया पकड़ लेते थे । उधर मुहल्ले में दुर्गा जी की झाकियाँ तैयार हो रही होती थीं, इधर ये घर का एक कोना छाँटकर अपनी झाकी सजाने लगते थे । एक अदद खाट, दवा की शीशियाँ रखने के लिए एक स्टूल, तथा हालचाल पूछने आनेवालों के लिए एक-दो खाली कुर्सियों का इंतजाम कर, वे क्वार की पहली तारीख से बिस्तर पर लेटकर कराहने लगते थे । उधर बुखार भी इतनी तैयारियों का बराबर लिहाज करता था और दो-चार दिनों के अंदर-अंदर आ ही जाता था ।

असल में अनुशासन का जमाना था वह जहाँ बच्चों से लेकर घर के दूसरे वयस्क, यहाँ तक कि बीमारियाँ भी बुजुर्गों का कहना मानती थीं । क्वार का महीना उठते ही मेरे उन बुजुर्ग की खाट, कुर्सी स्टूल वगैरह उठ जाते थे और फिर वे साल भर के लिए अगले क्वार तक निश्चित हो जाते थे ।

दरअसल वह जमाना ही और था । तब से अब तक बीमार भी बदल गए, बीमारियाँ भी । बीमारों की नई पीढ़ियाँ आ गई, बीमारियों की नई पीढ़ियाँ आ गई । नई पीढ़ियों ने विद्रोह किया और अपनी परंपराएँ डालीं । साहित्य में मोटे उपन्यासों, का, महाकाव्यों का, लंबी रचनाओं का दौर खत्म हुआ, छोटी रचनाओं का युग आया । फैलाव के बजाय संकेंद्रियता का जोर शुरू हुआ । कहा गया कि जीवन फास्ट है । आदमी के

पास समय नहीं है लंबे समय तक किसी भी चीज में संलिप्त रहने का। ऐसे में पुरानी बीमारियाँ भी अपने-आपको आउट-डेटेड महसूस करने लगीं। मोतीझरा उर्फ टायफायड जो इक्कीस-इक्कीस दिन चलता था, आउट आफ फैशन हो गया। चेचक जो महीनों आदमी को संगीत की विलंबित लय की तरह आनंद देती थी, गायब हो गई। इकतरा तथा तिजारी-जैसे बुखार जो महीना एक दिन के अंतर में, दो दिन के अंतर से आते रहते ये पुरानी कला विधाओं की तरह लुप्त हो गए।

जो लोग विलुप्त कलाओं की खोज के लिए चिंतित हैं उन्हें इन विलुप्त बीमारियों के संरक्षण की भी कुछ चिंता करनी चाहिए वरना दो-तीन पीढ़ियों के बाद यह पहचानना मुश्किल होगा कि हमारे बुजुर्गों ने कौन-कौन-सी बीमारियाँ झेली थीं।

अब युग मिनी का आ गया। लंबे कपड़े छोटे हो गए। लंबी कहानी लघुकथा हो गई और खंडकाव्य छोटी कविता। लिहाजा बीमारी भी ऐसी होने लगी कि बहुत कम समय आपके साथ रहें और आपको वो मजा दे जाएँ जो इक्कीस दिन का मियादी बुखार न दे पाता था। डेंगू, वायरल फीवर, ऐमेफेलाइटिस, मैनेंजाइटिस, फेलेजाइटिस, अर्टिकेरिया, क्यूटिकेरिया, कलकेरिया और पता नहीं क्या-क्या। लघु रचना की तरह प्रभावशाली होते हैं ये कांपेक्ट और दीर्घप्रभावी। थोड़े समय में ही आपके शरीर और दिमाग को उतनी क्षति पहुँचा देते हैं जितनी कि चाहिए। आपके पास अधिक समय नहीं है तो उन्होंने भी माँग के अनुरूप ऐसी वैरायटी पैदा कर दी, कि लीजिए हम भी आपका अधिक समय नहीं लेंगे। रहा मजा सो उतना ही दे जाएँगे जितना कि कोई गंभीर बीमारी छह महीने चिपके रहकर देती है।

बचने का, कहते हैं, एक ही इलाज है—इनफेक्शन से बचो और इनफेक्शन लगता है मच्छरों से, मक्खियों से, रोगी के संसर्ग में तथा पानी और हवा से। अब कैसे बचो इनसे, बीमारी को खुद सोचना चाहिए कि शहरी जीवन में नगरपालिका के पानी, डेयरी के दूध, सड़क किनारे के ढाबों, गंदी नालियों और गटरों से कैसे बचा जा सकता है? घर में ही कोई बीमार पड़ जाए तो उसके संसर्ग से कैसे बचा जा सकता है—और उसके

आता था तथा लगता था कि पेट के अंदर फुटबाल के आकार का दुखता हुआ गूमड़ उठ आया है जिस पर कोई लगातार हथौड़े से चोट कर रहा।

ऐसी हालत में किसी तीसरे डॉक्टर की मदद लेना सीधे ब्रह्मानंद की स्थिति में पहुँचना था। लिहाजा तय यह किया कि अब कुछ मत करो, चुपचाप पड़े रहो। बेरुखी दिखाने से मेहमान तक जल्दी चल देते हैं तो ये तो मामूली रोगाणु हैं।

देखनेवाले, हालचाल पूछनेवाले आते थे और कहते थे कि यह मौसम ही खराब है। क्वार का मौसम होता ही है बीमारियों का और इसमें तनिक एहतियात से रहना चाहिए। मेरे रिश्ते के एक बुजुर्ग भी यही कहते थे। मुझे याद है जब मैं छोटा था, वे बुजुर्ग क्वार का मौसम आते ही खटिया पकड़ लेते थे। उधर मुहल्ले में दुर्गा जी की झाकियाँ तैयार हो रही होती थीं, इधर ये घर का एक कोना छाँटकर अपनी झाकी सजाने लगते थे। एक अदद खाट, दवा की शीशियाँ रखने के लिए एक स्टूल, तथा हालचाल पूछने आनेवालों के लिए एक-दो खाली कुर्सियों का इंतजाम कर, वे क्वार की पहली तारीख से बिस्तर पर लेटकर कराहने लगते थे। उधर बुखार भी इतनी तैयारियों का बराबर लिहाज करता था और दो-चार दिनों के अंदर-अंदर आ ही जाता था।

असल में अनुशासन का जमाना था वह जहाँ बच्चों से लेकर घर के दूसरे वयस्क, यहाँ तक कि बीमारियाँ भी बुजुर्गों का कहना मानती थीं। क्वार का महीना उठते ही मेरे उन बुजुर्ग की खाट, कुर्सी स्टूल वगैरह उठ जाते थे और फिर वे साल भर के लिए अगले क्वार तक निश्चित हो जाते थे।

दरअसल वह जमाना ही और था। तब से अब तक बीमार भी बदल गए, बीमारियाँ भी। बीमारों की नई पीढ़ियाँ आ गई, बीमारियों की नई पीढ़ियाँ आ गईं। नई पीढ़ियों ने विद्रोह किया और अपनी परंपराएँ डालीं। साहित्य में मोटे उपन्यासों, का, महाकाव्यों का, लंबी रचनाओं का दौर खत्म हुआ, छोटी रचनाओं का युग आया। फैलाव के बजाय संकेंद्रियता का जोर शुरू हुआ। कहा गया कि जीवन फास्ट है। आदमी के

पास समय नहीं है लंबे समय तक किसी भी चीज में संलिप्त रहने का। ऐसे में पुरानी बीमारियाँ भी अपने-आपको आउट-डेटेड महसूस करने लगीं। मोतीझरा उर्फ टायफायड जो इक्कीस-इक्कीस दिन चलता था, आउट आफ फैशन हो गया। चेचक जो महीनों आदमी को संगीत की विलंबित लय की तरह आनंद देती थी, गायब हो गई। इकतरा तथा तिजारी-जैसे बुखार जो महीना एक दिन के अंतर में, दो दिन के अंतर से आते रहते थे पुरानी कला विधाओं की तरह लुप्त हो गए।

जो लोग विलुप्त कलाओं की खोज के लिए चिंतित हैं उन्हें इन विलुप्त बीमारियों के संरक्षण की भी कुछ चिंता करनी चाहिए वरना दो-तीन पीढ़ियों के बाद यह पहचानना मुश्किल होगा कि हमारे बुजुर्गों ने कौन-कौन-सी बीमारियाँ झेली थीं।

अब युग मिनी का आ गया। लंबे कपड़े छोटे हो गए। लंबी कहानी लघुकथा हो गई और खंडकाव्य छोटी कविता। लिहाजा बीमारी भी ऐसी होने लगी कि बहुत कम समय आपके साथ रहें और आपको वो मजा दे जाएँ जो इक्कीस दिन का मियादी बुखार न दे पाता था। डेंगू, वायरल फीवर, ऐंसेफेलाइटिस, मैनेंजाइटिस, फेलेंजाइटिस, अर्टिकेरिया, क्यूटिकेरिया, कलकेरिया और पता नहीं क्या-क्या। लघु रचना की तरह प्रभावशाली होते हैं ये कांपेक्ट और दीर्घप्रभावी। थोड़े समय में ही आपके शरीर और दिमाग को उतनी क्षति पहुँचा देते हैं जितनी कि चाहिए। आपके पास अधिक समय नहीं है तो उन्होंने भी माँग के अनुरूप ऐसी वेरायटी पैदा कर दी, कि लीजिए हम भी आपका अधिक समय नहीं लेंगे। रहा मजा सो उतना ही दे जाएँगे जितना कि कोई गंभीर बीमारी छह महीने चिपके रहकर देती है।

बचने का, कहते हैं, एक ही इलाज है—इनफेक्शन से बचो और इनफेक्शन लगता है मच्छरों से, मक्खियों से, रोगी के संसर्ग में तथा पानी और हवा से। अब कैसे बचो इनसे, बीमारी को खुद सोचना चाहिए कि शहरी जीवन में नगरपालिका के पानी, डेयरी के दूध, सड़क किनारे के ढाबों, गंदी नालियों और गटरों से कैसे बचा जा सकता है? घर में ही कोई बीमार पड़ जाए तो उसके संसर्ग से कैसे बचा जा सकता है—और उसके

संसर्ग से सभी बचने लगे तो वह बेचारा कैसे बचेगा ? इसके अलावा जो डॉक्टर पच्चीस मरीजों का देखने के बाद आपके घर आया है, उसके संसर्ग से आप कैसे बचेंगे ? हो सकता है वही इनफेक्शन ले आया हो। डॉक्टरों को बीमारियाँ कम होती हैं यह एक जानी हुई बात है। कहते हैं कुछ रोग अपने संवाहक को तकलीफ नहीं देते, वे उससे केवल कैरियर का काम लेते हैं।

शहर, कम से कम बीमारियों के मामले में तो समाजवादी होता है और वितरण की समानता में विश्वास करता है। यदि कोई बीमारी एक कोने से शुरू हुई तो शहर बहुत जल्दी अपनी समूची जनसंख्या में बिना किसी भेदभाव के उसे फैला देता है। सभी उसका मजा लें। अभी पूरे शहर में डेंगू फैला, सबने मजा लिया। एक-एक घर में चार-चार बीमार। बीमारी घर के एकाध सदस्य को सुरक्षित छोड़ देती थी जो कि दवा-दारू का इंतजाम करता रहे। जब पुराने बीमारों में से एकाध दवा-दारू की दौड़-धूप करने लायक ठीक हो जाता था, वह बीमारी उस बचे हुए को पकड़ती थी ताकि उसे शिकायत का मौका न रहे।

लोग कहते हैं कि ये जो विचित्र बीमारियाँ चली हैं, इनका कोई इलाज नहीं। ये अपना पूरा समय लेती हैं। दवा करो तो न करो तो। जैसे अगर बीमारी 'चार-दिनी' है तो जाहिर है कि वह उम्रेद राज चार दिन माँगकर लाई है और बराबर चार दिन रहेगी। जैसे विभिन्न धर्मावलंबियों ने ईश्वर के अलग-अलग नाम दे रखे हैं, उसी हिसाब से डॉक्टरों ने भी इन बीमारियों के अपने-अपने ढंग से नामकरण कर रखे हैं। डॉक्टर को आप बुलाएँगे तो वह दवा जरूर देगा। उसका काम है, उसका धंधा दवा की दुकान और कारखाने, अस्पताल की बिल्डिंग, फलों-सब्जियों और दूध की दुकानें इन सबकी अर्थव्यवस्था को चलाने की जिम्मेदारी है उसकी।

रहा फीस का सवाल, तो वह फीस भी लेगा। ज्यादा बुलाएँगे तो ज्यादा फीस लेगा और ऊँची दरों पर लेगा। एक डॉक्टर ने कहा कि वह ज्यादा फीस इसलिए लेता है कि लोग उसे न बुलाएँ। उसके समझ में बीमारी आती नहीं लिहाजा वह इलाज करने से बचना चाहता है।

मगर होता यह है कि मरीज और भी अधिक तादाद में उसे बुलाने आते हैं। यह सोचकर कि 'यह डॉक्टर महँगा है, तो जरूर गुणी होगा। मेरा पड़ोसी बीमार पड़ा तो उसने इस डॉक्टर को बुलाया था। डॉक्टर ने पड़ोसी को दवा नहीं दी, केवल फीस भर ली थी और ऊपर का इलाज बतलाया था। पड़ोसी कह रहा था कि उस डॉक्टर के आने से वह बहुत जल्दी ठीक हो गया था। उस घटना के बाद से उस डॉक्टर की माँग इस मुहल्ले में और बढ़ गई है। आखिर सबको तो पता नहीं कि उसने क्या इलाज किया था।

डॉक्टरों में कुछ साहित्य और कला प्रेमी भी होते हैं। ऐंटन चेखव का नाम तो मशहूर है ही। एक डॉक्टर जो पेंटिंग भी करता है एक बार मेरे पास आया था। उसने कहा कि जीवन के तमाम क्षेत्र परस्पर अंत-निर्भर होते हैं और परिवर्तन तथा विकास सभी क्षेत्रों में लगभग एक साथ एक ही गति से, और परस्पर संबंधित लय में होते रहते हैं। आधुनिक चित्रकला की तरह आधुनिक बीमारियाँ भी अमूर्त होती गई हैं। आप अपने ढंग से अमूर्त कला को समझने की चेष्टा करते हैं। विभिन्न कला-पारखियों की तरह विभिन्न डॉक्टर भी अपने-अपने ढंग से बीमारी को समझने की चेष्टा करते हैं तथा अपने ढंग से उसका इलाज करते हैं। वैसे अमूर्त बीमारी का इलाज भी अमूर्त तरीके से किया जाता है। लक्षणों के आधार पर कोई आठ-दस बीमारियों की दवा एक साथ दे दी जाती है। अगर रोग ग्यारहवें किस्म का नहीं हुआ तो एकाध दवा तो लग ही जाती है और रोगी पूरा मरने से बच जाता है।

अपनी अमूर्त बीमारी को समझने की चेष्टा मैं कर रहा हूँ। इस बीच बीमारी भी मुझे समझने की चेष्टा कर रही है कि यह आदमी अपने पर पैसा खर्च करेगा या नहीं। सुना है कुछ प्रेमिकाएँ भी तभी तक साथ रहती हैं जब तक कि उन पर पैसा खर्च किया जाता रहे। हो सकता है बीमारी इसी वजह से मुझे छोड़कर और किसी पर आसक्त हो जाए क्योंकि मैं अब इस पर पैसा खर्च नहीं करनेवाला।

कतार कथा

मेरे साथ दिक्कत यह है कि हमेशा गलत कतार में लगा हूँ। वैसे एक जमाना था जब मैं कतारों में लगने से साफ इंकार कर देता था। एक अहं नाम की चीज थी जिसे बाद को चलकर उतार फेंकना पड़ा। लोगों ने कहा कि कतार में लगना आदमी की नियति है और अगर आप इसमें नहीं लगते हैं तो वंचित रहेंगे। अनुभवी आदमी ने भी मुझसे कहा था। एक खिड़की की ओर इशारा करके उसने बतलाया था कि देखो उस खिड़की से कुछ बँटता है। सामने लगी कतार भी उसने बताई थी। साथ ही उसने पूछा था कि क्या वह खिड़की चलकर तुम तक आएगी ?

"अगर मुझमें काबलियत है तो खिड़की मुझ तक आएगी।" मैंने दर्प से कहा था। मैंने देखा कि वह मेरे मुँह से 'काबलियत' शब्द सुनकर हँसा था। साथ ही उसने कहा था कि मित्र, काबलियत एक मुगालता है जो जीवन की आरंभिक अवस्था में आदमी को होता है। मुझे ताज्जुब है कि इतनी उमर होने के बाद भी तुममें मुगालते बाकी हैं! काबलियत तो दूर, मुझे तुममें अकल की भी कमी दिखाई देती है।

वह आदमी समझदार था, मँजा हुआ था, अनुभवी था। उसने मुझसे कहा था कि मैं उसके साथ दो मिनिट के लिए अंदर चलूँ। मैं उसके साथ हो लिया। अंदर ले जाकर उसने खिड़की पर बैठे आदमी से, जो बाँटने-वाली जगह पर बैठा था, आधे क्षण के लिए अपनी सीट से उठने को कहा

था। साथ ही उस सीट पर मुझे बैठा दिया था और पूछा था कि जरा इस खिड़की के छेद से बाहर की दुनिया देखो और बोलो क्या दीखता है? मैंने देखा, लाइन में लगा हर आदमी मुनगा नजर आया। जो लाइन में लगे नहीं थे, वे दिखाई ही नहीं दिए। लगा, सामनेवाले कीड़े हैं, और गिड़गिड़ाते हुए याचक की मुद्रा में खड़े हैं। जमीन से डेढ़ फुट ऊँची वह कुर्सी यूँ लगी, इंद्र का सिंहासन है। मैंने उस आदमी से कहा कि इंद्र का सिंहासन मैंने कभी देखा नहीं है, मगर मुझे लग रहा है कि मैं उस पर बैठा हूँ। उसने मुझसे कहा कि ऊपर की पंक्ति पर सोफा पड़ा है, और उस पर जो आदमी पड़ा है, वह इस खिड़की पर बैठे आदमी से भी बड़ा है। दो मिनिट के लिए वहाँ लेटाएँगे तो लगेगा कि तुम शेषशायी विष्णु हो और हौले-हौले मुस्कराकर, हल्के-हल्के हाथ उठाकर लोगों को आशीर्वाद बाँट रहे हो। उधर साक्षात लक्ष्मी जी तुम्हारे पैर दबा रही हैं। लक्ष्मी से पैर दबवाना हो तो बेटा, लाइन में लगो। इन कुर्सीवालों, सोफेवालों की भी बाकायदा लाइनें लगती हैं। इसके बाद उसने मुझे उस कुर्सी से उठा दिया था और बाहर ले आया था। मैंने इस आदमी से कहा, "यार, मेरा उस कुर्सी से उठने का मन नहीं हो रहा था।" उसने कहा, "कुर्सी की यही विशेषता है, उस पर से उठने का आदमी का मन नहीं होता।" साथ ही उसने कहा कि वह सोफे तक इसीलिए मुझे नहीं ले गया, क्योंकि अगर मैं एक बार सोफे पर लेट जाता तो फिर कभी न उठता।

"क्यों? वे आसपास हाथ जोड़कर खड़े लोग मुझे उठा देते।" मैंने कहा।

"उनमें इतनी हिम्मत नहीं है। वे आदमी को नहीं देखते, सोफे को देखते हैं। अगर सोफे पर लाश भी पड़ी हो, तो भी वे उसके हाथ जोड़े आँखें मूँदकर खड़े रहेंगे। उनके लिए तो जो भी लेटा है, वही साक्षात विष्णु है।"

तुलसीदास जी को उनके गुरु शूकर खेत में मिले थे और उन्हें रामकथा का ज्ञान दिया था। वाल्मीकि को नारद जंगल में मिले थे और उनके दिव्यचक्षु खोल दिए थे। मुझे यह आदमी एक कतार में लगा हुआ मिला और मेरी आँखें खोल गया—कतार में लगो। कतार में लगोगे तो खिड़की

तक पहुँचोगे। खिड़की तुम तक नहीं आएगी। खिड़की के छेद से जब कतार में लगा हुआ आदमी ही कई बार दिखाई नहीं देता, तो कतार के बाहरवाला क्या दिखाई देगा? उधर कुछ पुराणों के उद्धरणों में भी मिला कि कलियुग में जीवन कतार प्रधान होगा। अगर आदमी को जीवित रहना है तो उसे कतार में लगना अनिवार्य होगा। बिना कतार में लगे आदमी की सद्गति नहीं होगी। ऐसा आदमी अगर मर गया तो प्रेत बनने के बाद कतार में लगेगा और जब तक उसकी आत्मा खिड़की तक पहुँच कर कुछ पा नहीं लेती, उसे मोक्ष नहीं मिलेगा। लिहाजा मैंने अपने अहं से थोड़ा समझौता किया और कतार में लगने का फैसला किया।

कहते हैं, आधा ज्ञान हमेशा खतरनाक होता है। किसी काम में हाथ तभी डालना चाहिए जबकि आप उसमें दक्ष हो जाएँ, अन्यथा असफलता हाथ लगती है। वह आदमी मुझे यह तो बता गया था कि लाइन में लगो, मगर बाकी की बातें उसने नहीं बतलाई थीं। मसलन यह कि किस लाइन में लगो, कब तक लगो, किस प्रकार लगो। होता यह था कि जिन लाइनों में मैं लगता था, उनमें से अधिकतर धकियाकर बाहर कर दिया जाता था। या यह होता था कि जब तक मैं खिड़की तक पहुँचूं मेरा नंबर आए, खिड़की बंद हो जाया करती थी। वहाँ की अव्यवस्था देखकर कई बार मैं झगड़ा करने पर उतारू हो जाता था और अपने कपड़े फड़वाकर लौटता था। एक बार तो एक दादा किस्म के आदमी को जबरन आगे घुसते देख मैं उससे उलझ गया। एक दिन उस दादा व उसके समर्थकों ने मेरी वह हालत बना दी थी कि मैं उसके बाद अगले महीने भर तक किसी भी लाइन में लगने लायक नहीं रह गया था। वैसे उनका इरादा मुझे हमेशा-हमेशा के लिए लाइन में लग सकने के काबिल न रहने देने का था। मुझे ताज्जुब हुआ था लाइन में लगनेवालों की इस प्रवृति पर कि वे एक-दूसरे से किस बुरी तरह नफरत करते थे! एक-दूसरे को नष्ट कर देने पर आमादा। वो तो केवल वह बाँटनेवाली खिड़की ही उन्हें एक सूत्र में बाँधे थी अन्यथा वे एक-दूसरे के जानी दुश्मन थे। मैं उस दिन उलझकर अपनी जान बचाकर किसी तरह निकल आया था और मैंने फिर उस आदमी को ढूंढ़ा था जो मेरा गुरु था, मेरे लिए बाबा नरहरिदास था, देवर्षि नारद था। मैंने

अपनी दिक्कतें बतलाईं तो उसने कहा कि या तो तुम गलत लाइनों में लगते हो, या तुम्हारा लाइन में लगने का तरीका गलत है। साथ ही उसने कहा कि लाइनें दो प्रकार की होती हैं—एक वे जो दिखाई देती हैं, और दूसरी जो दिखाई नहीं देतीं। ठीक वैसे ही जैसे ब्रह्म दो तरह के होते हैं—साकार और निराकार। उसने मुझसे कहा कि तुमने केवल साकार ब्रह्म से साक्षात्कार किया है, आओ तुम्हें निराकार ब्रह्म दिखाएँ जो कण-कण में व्याप्त है। वह बाहर से दिखाई नहीं देगा। उसके लिए अंतर्जगत से साक्षात्कार करना होगा। उसके बाद वह कुछ गलियारों से निकालकर—ऐसे गलियारों से निकालकर जो आत्मा के, अंतरतम के गलियारे थे—मुझे पीछे की ओर ले गया और पीछे लगी लाइन बतलाई। यह पीछेवाली लाइन, आगेवाली लाइन से ज्यादा लंबी थी और उधर से बँटने वाली सामग्री की मात्रा भी, बाहर बँटनेवाली सामग्री से अधिक थी। इस लाइन के लोगों के लिए कोई खिड़की नहीं थी। एक दरवाजा था, जो खुला था और जिस पर 'सुस्वागतम' का बोर्ड लटक रहा था। लोग कुछ पर्चियाँ, चिट्ठियाँ, बिल्ले दिखा-दिखाकर, अपना परिचय दे-देकर अंदर घुस रहे थे और इत्मीनान से बँटता हुआ माल ले-लेकर जा रहे थे। इन लोगों के चेहरों पर प्रसन्नता थी, संतोष था। उन लोगों के लिए शेड की व्यवस्था थी, जबकि खिड़की के बाहर धूप थी। उन लोगों को बाँटनेवाला आदमी खड़े होकर आदर के साथ सामग्री देता था जबकि बाहर वही दुत्कार और एहसान-सा जतानेवाली हालत थी जैसी कि आमतौर पर बाहर लगी लाइनों में होती है। मेरे फ्रेंड-फिलासफर और गाइड ने मुझसे कहा कि यह सही लाइन है। तुम्हें इसमें लगना था। मगर इसके लिए तुम्हें कुछ लोगों से परिचय करना होगा। क्या तुम्हारा किसी से परिचय है? उसने पूछा था।

"नहीं है," मैंने कहा था, "मैं जब से पैदा हुआ तभी से अपने इर्द-गिर्द अपरिचय के विंध्याचलों को ढोता रहा हूँ।" तब उसने कहा था कि परिचय नहीं है तो पैसों से काम चल जाएगा। "कुछ पैसा है तुम्हारे पास?" मैंने कहा कि पैसे और परिचय का क्या संबंध? तो उसने कहा कि प्रगाढ़ संबंध है। पैसा परिचय पैदा करता है। पहले से किए गए परिचयों को

पुख्ता करता है। पुख्ता परिचयों को दीर्घकालीनता प्रदान करता है।

मैंने कहा कि पैसे को मेरे बुजुर्ग लोग हाथ का मैल समझते थे, उन बुजुर्गों के बुजुर्ग भी पैसे को हाथ का मैल समझते थे और अपने हाथ हमेशा धुले-पुछे रखने में विश्वास करते थे। मैं इस मामले में पीढ़ी दर पीढ़ी, यानी परंपरा से सफाईपसंद हूँ। इसके बाद मैंने उसे अपनी हथेलियां दिखलाईं जो बिलकुल साफ थीं तथा जिन पर किसी किस्म की गंदगी नहीं थी। इस पर उसने मेरी पीठ पर हाथ रखा था तथा प्रेम से पुचकार कर कहा था, 'तो फिर बाहर आ जाओ मुन्ना, चलो जल्दी चलो।' कहकर वह मुझे लगभग धकियाता हुआ बाहर ले आया था। बाहर लगी हुई धूप खाती, धक्का खाती कतारों की ओर इशारा करते हुए उसने कहा था, "जाकर लग जाओ लाइन में बेटा, देर करोगे तो लाइन और लंबी हो जाएगी।"

उधर अनेकानेक कतारें लगीं थीं। मीलों लंबी, कोसो लंबी, सर्पाकार कतारें, अजगर-जैसी कतारें। मैं उन कतारों में से एक की ओर बढ़ रहा था। उसके अंतिम सिरे की ओर। यह मुझे पता नहीं था कि उस अंतिम सिरे पर उस अजगर की पूंछ है, या मूंह।

पथ और महाजन लोग

उस सड़क के किनारे से होकर मैं रोज निकलता था। एक जगह बोर्ड लगा था—'सडक चौड़ीकरण, काम चालू। धिरे चलीए'। लोग वाकई धीरे चल रहे थे तथा सडक वाकई चौडी हो रही थी। जाहिर है कि लोग भाषा पर नही, भावना पर जा रहे थे।

सड़क कितनी चौडी हो रही थी तथा कब से चौडी हो रही थी और कब तक हो जाएगी, ये सवाल बेमानी थे, क्योंकि लगभग साल भर से तो मैं ही उसे चौड़ी होते देख रहा था। कभी-कभार डेढ या दो मजदूर कुछ काम करते दिखाई पड़ जाते थे, बाकी एक बिगडा हुआ डीजल का रोड-रोलर वहाँ स्थायी रूप में खडा रहता था, जिसके पहिए कर्ण की रथ की तरह भूमि में आधे धँसे हुए थे। जाहिर है कि पिछली बरसात में जब कीचड़ मची थी तब यह घटना हुई होगी। लगभग एक किलोमीटर की दूरी तक सड़क खुदी पडी थी तथा लोग कहते थे कि लोक-निर्माण विभाग वालों ने यह सडक नही खोदी है, बल्कि रात मे गुजरनेवाले पदयात्रियों, साइकिल-सवारों तथा स्कूटर ऑटो-रिक्शावालों के लिए कब्र खोदी हुई है।

वैसे 'धिरे चलीये' लिखा ही था जो एक साथ दो उद्देश्य पूरे करता लगता था। एक तरफ तो वह आने-जानेवालो को धीरे चलने के लिए आगाह करता था तथा दूसरी तरफ संभवत: लोक-निर्माण विभागवालों का

यह मंतव्य भी प्रकट करता था कि हमें यथासंभव धीरे ही चलना है। कहावत भी है कि धीरे किया गया काम मजबूत और पुख्ता होता है। वैसे पी. डब्ल्यू. डी. वालों का काफी काम मजबूत और पुख्ता होता है। एक बार एक पुल के निर्माण स्थल पर रखा हुआ सीमेंट बोरों में रखा-रखा ही पुख्ता हो गया था। जाँच चली थी, मगर दंडित कोई नहीं हुआ था। दर-असल कुसूर बारिश का निकाला था जो समय पर आ गई थी। दूसरे सीमेंट के पानी लगकर पुख्ता हो जाने से यह बात प्रमाणित होती थी कि इंजीनियर लोग काफी ईमानदार हैं तथा मिलावटी सीमेंट नहीं खरी-दते, सिर्फ असली माल वापरते हैं।

जिस सड़क की बात मैं कर रहा था, दुर्घटनाएँ वहाँ अक्सर होती थीं। मगर चूँकि बोर्ड लगा था, किसी को शिकायत की गुंजाइश नहीं थी। बोर्ड लगाना या कि दीवारों पर नारे लिख देना हमारे यहाँ की बहुत पुरानी परंपरा है तथा समस्याओं का स्थायी हल है। काफी अरसा पहले जगह-जगह लिखा देखा था—'न मच्छर रहेगा, न मलेरिया।' कुछ पढ़े-लिखे मच्छरों को यह बात भले ही नागवार गुजरी हो, जनता को काफी अच्छी लगी थी। मगर चूँकि भारत की आम जनता की तरह मच्छरों में भी साक्षरता का प्रतिशत कम था, अधिकांश मच्छरों ने उन नारों को नहीं पढ़ा और वे रहे आए। अब होना यह था कि मच्छरों के लिए प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम चलाए जाते मगर चूँकि हमारे यहाँ समस्याओं को सुलझाने के बजाय उन्हें स्वीकार कर लेने की परंपरा ज्यादा लोकप्रिय है, स्थितियों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया तथा नया नारा जगह-जगह लिखा गया—'मच्छर रहेगा, परंतु मलेरिया नहीं।' यानी आग रहेगी परंतु उसमें आँच नहीं, या कि बिजली रहेगी परंतु करंट नहीं। जाहिर है कि आग के साथ आँच रहती है तथा बिजली के साथ करंट भी रहता है। लिहाजा मच्छर के साथ मलेरिया भी रहा आया।

जैसे खाद देने से सब्जी-भाजी का आकार बढ़ जाता है उसी तरह मच्छर-मार दवाओं के प्रभाव से मच्छरों का आकार और बढ़ गया तथा वे अब अधिक मात्रा में मलेरिया के कीटाणुओं को ढो सकने में समर्थ हो गए। आम मच्छर देखने में मिनी-हेलिकॉप्टर-जैसा लगने लगा तथा उड़कर

शरीर पर बैठता भी उसी गरिमा में था जैसे मिलिटरी का हेलिकॉप्टर हथियारों, बमों आदि से लैस होकर उड़ता हुआ जमीन पर लैंड कर रहा हो।

एक वैज्ञानिक ने भविष्यवाणी की है कि अगर मच्छरों पर दवाओं का इसी प्रकार छिड़काव होता रहा तो मच्छर का आकार अगले पचास साल में चूहे के बराबर, सौ साल में कुत्ते के बराबर तथा दो-सौ साल में ऊँट के बराबर हो जाएगा। जिस तरह से मच्छर अपना आकार बढ़ा रहा है, उन हालातों को देखते हुए यह असंभव भी नहीं लगता।

एक डॉक्टर यह सुनकर बड़ा खुश हुआ। बोला, "अच्छा है, मच्छर यदि कुत्ते के बराबर हो गया तो उसको मारना आसान रहेगा।" मैंने कहा कि मच्छर के लिए भी आदमी को मारना आसान हो जाएगा। जो मच्छर अभी मच्छर के आकार का है और एक बार काटकर आदमी को को चार दिन मलेरिया में फेंट देता है, वह यदि कुत्ते के आकार का हो गया तो आदमी को मारने के लिए उसे शायद काटने की जरूरत ही न पड़े। भौंकने मात्र से हो सकता है वह पूरे का पूरा मुहल्ला साफ कर दे। डॉक्टर यह सुनकर भी खुश हुआ। बोला, "ठीक है अधिक लोग बीमार पड़ें तो इसमें अपने को नुकसान नहीं है। अपन की मरीज तीस रुपया लेते हैं। मरीज अपने घर आए तो तीस रुपया। अपन मरीज के घर जाएँ तो तीस रुपया। मरीज रास्ते में मिल जाए तो तीस रुपया।"

इसके बाद वह डॉक्टर कुछ हिसाब लगाने लगा था। थोड़ी देर बाद बोला, "यदि तीन हजार की आबादी में मलेरिया फैल जाए और बस्ती में अपन ही एकमात्र डॉक्टर हों तो एक एंबेसेडर कार पिन।" फिर वह बोला कि पिछले डेंगू के सीजन में उसने एक नया मकान बनवाया है तथा तय किया है कि वह मकान का नाम 'डेंग-कृपा' या 'डेंग-छाया' रखेगा।

डॉक्टर की भी अपनी चिन्तनशैली तथा कार्यप्रणाली होती है। इस सिलसिले में एक कान-नाक-गला विशेषज्ञ तथा उसके मरीज की याद आ रही है। मरीज के गले में कुछ तकलीफ थी। डॉक्टर कान का इलाज कर रहा था तथा कहता था कि गले में तकलीफ कान के कारण है। मरीज के यह बात समझ में नहीं आ रही थी। वह गला बताता था डॉक्टर कान

देखता था तथा कहता था कि तुम्हारे समझ में नहीं आएगा क्योंकि तुम मरीज हो। डॉक्टर और मरीज में तो यही फर्क होता है। डॉक्टर हर बार कान में डालने की दवा लिख देता था तथा मरीज को आठ दिन बाद फिर आने को कहता था। पहले दिन जब मरीज डॉक्टर के यहां गया था तो डॉक्टर ने उसके गले में चिमटा-जैसा कुछ फँसाकर देखा था, फिर नाक में संडसी-जैसा एक औजार फँसाकर देखा था, फिर कान में एक कीप या चाड़ी फँसाकर देखा था तथा तीस रुपए फीस के लिए थे। इसके बाद हर आठवें दिन वह मरीज के कान में केवल टॉर्च से रोशनी डालकर देखता और पहले लिखी गई दवा को आठ दिन और कान में डालने को कहता तथा फीस के तीस रुपए ले लेता था। एक दिन मरीज अपनी जेब में टॉर्च डालकर ले गया। डॉक्टर ने मरीज के दाएँ कान में टॉर्च की रोशनी डाली और तीस रुपए माँगे। उत्तर में मरीज ने अपनी जेब से टॉर्च निकालकर डॉक्टर के दोनों कानों में बारी-बारी से रोशनी डाली और कहा, "साठ रुपए निकालो।"

"क्या बदतमीजी है ?" डॉक्टर बोला।

"बदतमीजी नहीं है। एक कान में बैटरी चमकाने के तीस रुपए हुए तो दो कान के साठ रुपए नहीं हो गए।"

दाढ़ी

दाढ़ीवालों ने मुझे हमेशा आकृष्ट किया है तथा दाढ़ी रख लेने के गुण-दोषों पर मैं हमेशा से विचार करता रहा हूँ। अपने बचपन से लेकर अभी तक अनेक दाढ़ीवालो के सपर्क मे मैं आ चुका हूँ तथा उन दाढ़ीवालों मे और बिना दाढ़ीवालों में किसी प्रकार का फर्क ढूँढने की चेष्टा करता रहा हूँ।

मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है कि जीवन मे सबसे पहले किस दाढ़ीवाले ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया, मगर इतना जरूर बता सकता हूँ कि जब मैं बहुत छोटा था, यानी लगभग चार-छः साल का तो मेरे रिश्ते के एक अधेड़ सज्जन जो अक्सर हमारे यहाँ आते थे, उन्होने दाढ़ी रख ली थी। वे लगभग रोज हमारे यहाँ आते थे और उनकी दाढ़ी को मैंने क्रमशः बढ़ते हुए देखा था। सूत दर सूत, इंच दर इंच बढते हुए, ठीक वैसे ही जैसे लोग अपने गमलों मे पौधों को बढते हुए देखते हैं। मैंने कुतूहलवश अनेक बार अपनी माँ से पूछा था कि उन अंकल जी के चेहरे पर इतने घने और बडे बाल क्यों हैं, और मेरे चेहरे पर क्यों नहीं हैं तो माँ ने कहा था कि बेटा, जब आदमी छोटा रहता है तो उसके अनेक ऐब और बुराइयाँ छुपी रहती हैं, ज्यों-ज्यों बडा होता जाता है, सब उजागर होता चलता है और धूर्तता चेहरे से झलकने लगती है। अभी तेरे बाल चेहरे के अंदर छुपे हुए हैं, जब तू बडा हो जाएगा तो तेरी भी दाढ़ी उग आएगी। माँ ने दाढ़ी को ऐब कहा

था या दाढ़ी के बहाने कुछ और कहा था, यह तब मेरी समझ में नहीं आया था। इतना जरूर लगा था कि दाढ़ी एक बुराई है और मैं उससे बचा रहूँ तो ही ठीक है। इस पर भी माँ ने कहा था कि बेटा, आदमी लाख चाहे तो भी बुराई से नहीं बच सकता। बुराई से बचने के लिए संत या साधु होना पड़ता है।

मैंने अनेक साधु-संतों की भी दाढ़ियाँ देखी थीं तथा पूछने पर माँ ने बताया था कि दाढ़ी अनेक संतों की असलियत छुपाए रखती है तथा हर दाढ़ीवाला संत नहीं होता।

पिता के विचार माँ के विचारों के ठीक विपरीत थे तथा वे दाढ़ीवालों की बराबर कद्र करते थे—साथ-साथ दाढ़ी की भी कद्र करते थे और बीच-बीच में खुद भी बढ़ा लिया करते थे। दाढ़ी के बारे में पिता से मैं अधिक सवाल नहीं करता था, बल्कि किसी के बारे में भी मैं उनसे सवाल नहीं किया करता था क्योंकि मेरे दो-चार सवालों का उत्तर देने के बाद वे बहुत जल्दी मुझे झापड़ मारकर चुप कर देने की स्थिति में आ जाते थे, और एक-दो बार के अनुभव के बाद ऐसी कोई स्थिति पैदा हो इससे पहले ही मैं दृश्य से हट जाया करता था।

माँ मेरे तमाम सवालों को बर्दाश्त करती थी मगर पिता अधिक देर तक नहीं कर पाते थे। माँओं की बर्दाश्त-क्षमता काफी होती है तथा मैं देखता था कि माँ पिता की अनेक ज्यादतियों को भी बर्दाश्त कर लिया करती थी। वैसे, मेरे साथ एक लड़की खेला करती थी, जो कहती थी कि उसकी माँ ज्यादतियाँ बर्दाश्त नहीं करती तथा उसके पिता की हर बात का माकूल उत्तर देती है। साथ ही उसने कहा था कि उसके पिता की भी बर्दाश्त-क्षमता ज्यादा है। तब मुझे लगा था कि कुछ पिताओं की भी बर्दाश्त-क्षमता ज्यादा होती है। उस लड़की ने कहा था कि उसके पिता दाढ़ी नहीं रखते। तब मुझे लगा था कि शायद दाढ़ी का और बर्दाश्त-क्षमता का कोई परस्पर संबंध जरूर है। मैंने पाया था कि जिन दिनों पिता के चेहरे पर दाढ़ी होती थी वे बहुत जल्दी गुस्से में आ जाते थे। वे दरअसल दाढ़ी भी गुस्से में आकर ही बढ़ाते थे और बकौल माँ के ज्यों-ज्यों उनकी दाढ़ी बढ़ती जाती थी, गुस्सा भी बढ़ता जाता था। मगर जैसे कि हर चीज के बढ़ने की

एक सीमा होती है, दाढ़ी की भी होती थी और उसके साथ गुस्से की भी होती थी तथा एक दिन अचानक हम लोग पाते थे कि पिता जी की दाढ़ी गायब है तथा गुस्सा भी गायब है। दाढ़ी कटने से गुस्सा खत्म हुआ या गुस्सा खत्म होने से दाढ़ी कटी, यह एक रहस्य ही रहा करता था हम लोगों के मन में। खास कर मेरी बड़ी बहिन को जो मुझसे चार साल बड़ी थी, कुछ भी समझ में नहीं आता था। वैसे माँ उससे कहती थी कि तुम लड़की हो, औरत जात हो, और तुमको आदमियों की बहुत-सी बातें समझ में नहीं आएँगी। इसके अलावा माँ कहती थी कि दाढ़ी आदमी का विशुद्ध व्यक्तिगत मसला है, नितांत निजी समस्या है, निजी सुविधा है और इसमें स्त्रियों की दिलचस्पी नहीं होनी चाहिए।

मगर मैं औरत जात नहीं था, आदमी जात था, अतः मेरी दिलचस्पी दाढ़ी में थी तथा उन सब लोगों में थी जो दाढ़ी रखते थे। रिश्ते के जो सज्जन हमारे यहाँ आते थे और जिन्होंने दाढ़ी बढ़ा रखी थी उनके बारे में मुझे बताया गया कि उनके साथ उनके दफ्तर में कोई अन्याय हो गया था, उसके प्रतिकारस्वरूप उन्होंने अपनी दाढ़ी बढ़ा ली थी तथा प्रण किया था कि जब तक उनके साथ न्याय नहीं हो जाता वे दाढ़ी नहीं काटेंगे। अन्याय शायद यह हुआ था कि उन्हें हेड क्लर्क से सुपरिटेंडेंट होना था और उनका नाम काटकर उनसे जूनियर को उस पर बैठा दिया गया था। उन्होंने अपना कसूर पूछा तो अनधिकृत तौर पर बताया गया था कि जिसका प्रमोशन हुआ है उसके माई-बाप हैं और चूँकि तुम्हारे कोई माँ-बाप नहीं हैं, तुम्हारा नहीं किया गया। बिना माई-बाप के बच्चे को अनाथालय में तो भरती किया जा सकता है, कार्यालय सुपरिटेंडेंट नहीं बनाया जा सकता। तभी मुझे बताया गया था कि पैदा करनेवाले माई-बापों के अलावा भी माई-बाप होते हैं और ये दूसरे किस्म के माई-बाप ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं।

उक्त सज्जन को उनके सहयोगियों ने सलाह दी थी कि वे किन्हीं माई-बापों को साधें, उनसे संबंध बढ़ाएँ मगर इन्होंने दाढ़ी बढ़ाना ज्यादा बेहतर समझा था तथा कसम खा ली थी कि सुपरिटेंडेंट होने के बाद ही दाढ़ी काटेंगे। वे दाढ़ी बढ़ाते-बढ़ाते देखने में रवींद्रनाथ टैगोर हो गए थे, मगर

सुपरिटेंडेंट नहीं हो सके थे। तब लोगों ने उन्हें सलाह दी थी कि अब वे दाढ़ी न काटें क्योंकि प्रमोशन उनका भले ही न हो, विश्व में सबसे लंबी दाढ़ी रखने का कीर्तिमान वे जरूर कायम करेंगे और दुनिया उन्हें सम्मान देगी। इस दाढ़ी रखने की वजह से हुआ यह कि उनका अफसर उनसे नाराज हो गया और उनका तबादला पता नहीं कहाँ कर दिया। वह अफ-सर खुद भी दाढ़ी रखता था तथा गुस्से में आकर अक्सर इन सज्जन से कहता था कि इनका तबादला वह उसी जगह करेगा जहाँ से कि वह खुद होकर आया है। उस जगह के बारे में सुन रखा था कि इतनी खराब थी कि वहाँ दाढ़ी बनाने के लिए नाई तक नहीं मिलते थे। वैसे मेरे पिता का कहना था कि वह अफसर उन सज्जन की दाढ़ी से जलता था लिहाजा उनका तबादला कर दिया। अफसर की चुग्गी दाढ़ी के मुकाबले उनकी दाढ़ी काफी लंबी और घनी थी और कोई भी अफसर यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता कि उसके मातहत की कोई चीज उसकी अपनी किसी चीज से बेहतर हो। साथ ही पिता एक उदाहरण देते थे कि एक छोटे अफसर की अंग्रेजी अपने बड़े अफसर से अच्छी थी तो बड़े अफसर ने उस छोटे अफसर को सलाह दी थी कि वह अपनी अंग्रेजी सुधार ले नहीं तो वह उसे सुधार देगा। और कहना न मानने पर उस बड़े अफसर ने उसे सुधार भी दिया था। उस बड़े अफसर के बारे में कहा जाता था कि नौकरी में आने के पहले वह घड़ी सुधारने का काम करता था तथा तभी से वह चीजों को सुधारने में सिद्धहस्त माना जाता था। वैसे आदमी मेहनती था तथा घड़ी सुधारते-सुधारते ही उसने अपनी किस्मत सुधार ली थी। काफी बड़े लोगों के संपर्क में उन दिनों वह आया था जिनकी घड़ियाँ अक्सर खराब रहती थीं। वैसे पिता का यह मत था कि बड़े लोगों की घड़ियाँ अक्सर खराब रहती हैं तथा उससे आम पब्लिक को भले ही तकलीफ होती हो, घड़ीसाजों को बराबर लाभ होता है। संपर्कों से सामान्य आदमी भी काफी ऊँचा उठ जाता है, लिहाजा वह घड़ीसाज भी उठ गया था। वैसे न्यूनतम योग्यता उसमें थी और वह बी. ए. पास था, बी. ए. में भी न्यूनतम अंक लेकर पास हुआ था। वह कहता भी था कि न्यूनतम योग्यता तथा अधिकतम संपर्कों के सहारे कहीं का कहीं पहुँचा जा

सकता है और उसने सचमुच पहुंचकर दिखा भी दिया था।

पिता के पास इस तरह के काफी किस्से थे जिन्हें वे समय-समय पर सुनाते रहते थे। इस घड़ीसाज का किस्सा सुनकर मेरी तबीयत हुई थी कि पूछूं कि वह दाढ़ी भी रखता था क्या, मगर मेरी हिम्मत न पड़ी थी क्योंकि उस दौरान जब यह किस्सा सुनाया गया था, पिता ने खुद भी दाढ़ी बढ़ा रखी थी तथा उनकी दाढ़ी और गुस्से का क्या संबंध था, यह मैं पहले बता चुका हूं।

तो जनाब, यह दाढ़ी मुझे बचपन से ही प्रभावित करती रही। मेरे मन में बढ़ती रही, पनपती रही तथा मैं सोचता रहा कि बड़ा होकर मैं भी दाढ़ी रखूंगा। यह दाढ़ी किस प्रकार की होगी यह मैं निश्चय नहीं कर पाया था तथा अपने पड़ोस के अंकल की चार बालवाली चुग्गी दाढ़ी से लेकर रवींद्र नाथ टैगोर की लंबी दाढ़ी तक की कल्पनाएं मेरे मन में उभरती थीं। कुछ साधु-महात्माओं की दाढ़ियां भी मैंने देखी थीं जिन्हें वे बरगद का दूध लगाकर लटों का रूप देते थे। कुछ तस्वीरों में मैंने अब्राहम लिंकन, कार्ल मार्क्स वगैरह की दाढ़ियां भी देखीं तथा यह धारणा मेरे मन में लगभग बैठ चली थी कि विशिष्ट होने के लिए दाढ़ी रखना जरूरी है। मेरे पड़ोस में जो चुग्गी दाढ़ीवाला आदमी रहता था, वह कुछ कविताएं वगैरह भी करता था तथा हमारे मुहल्ले में वह हलकट के नाम से जाना जाता था। उधर मैंने सुन रखा था कि रवींद्र नाथ टैगोर महाकवि थे तथा उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला था। मैंने हलकट से कहा था कि अंकल, आप लंबी दाढ़ी क्यों नहीं रखते, आप भी महाकवि हो जाएंगे तो उस आदमी ने मुझे झिड़क दिया था। तब लोगों ने मुझसे कहा था कि चुग्गी दाढ़ी उसकी मजबूरी है, कमजोरी है और कभी किसी की कमजोरी पर चोट नहीं करनी चाहिए। मैंने लोगों से कहा कि वह कभी भी पूरा कविता-संग्रह नहीं लिख पाएगा तथा चेहरे पर चार बाल उगाकर वह क्षणिका लिखते-लिखते ही जीवन गुजार देगा। मैं तो उसके भले की ही बात कर रहा था। इस पर लोगों ने कहा कि किसी के भले की बात करो तो वह अक्सर नाराज हो जाता है, या उल्टा मतलब लगाता है इसलिए कभी किसी के भले की बात नहीं करनी चाहिए।

स्कूल में मैंने निराला, पंत, महादेवी वगैरह को पढ़ा। उनकी तस्वीरें देखीं। हमारे मास्साव जो खुद भी दाढ़ी रखते थे उनकी राय में निराला सर्वश्रेष्ठ थे। इसके कारण उन्होंने दो बतलाए थे। एक तो उनकी कविताएँ बाकी लोगों से दमकार थीं तथा दूसरे वे दाढ़ी रखते थे। पंत के बाल हालांकि लंबे थे मगर दाढ़ी दाढ़ी होती है और सर के बाल तथा दाढ़ी के बालों में फर्क होता है। मास्साव की राय में बाल बांका करनेवाली कहावत दाढ़ी के बालों से चली थी और बाकी कवि लोग इसलिए दाढ़ी नहीं रखते थे कि उन्हें अपना बाल बांका हो जाने का भय रहता था।

कविताएँ मास्साव भी करते थे तथा कहते थे कि दाढ़ी कवित्व की प्रेरक होती है। वाल्मीकि जो इतने बड़े कवि हो गए थे, उसका मूल कारण यही था कि उन्होंने दाढ़ी रख ली थी। यह दाढ़ी उन्होंने नारद की सलाह पर रखी थी जिन्होंने यह कहा था कि दाढ़ी रख लेने से उन्हें दो लाभ होंगे—एक तो वे कवि हो जाएँगे तथा दूसरे वे पुलिसवालों की पहचान में नहीं आएँगे तथा उन पर पिछली डकैतियों के मामले कायम नहीं हो पाएँगे।

इधर कुछ दाढ़ीवालों के विचार जानकर मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि दाढ़ी विकास में मददगार होती है। नए-नए छोकरे जिन्होंने अभी कल ही कविता लिखना शुरू किया है, दाढ़ी रख लेने के बाद प्रतिष्ठित कवि लगने लगते हैं। नए राजनीतिक कार्यकर्ता घाघ राजनीतिज्ञ होने का वहम देते हैं। 'साप्ताहिक लात घूंसा' किस्म के अखबारों के संपादक प्रखर चिंतक होने का असर छोड़ते हैं। दाढ़ी उमर छिपाती है। चेहरे के ऐब छिपाती है—यदि ज्यादा घनी हो जाए तो पूरा चेहरा छिपा देती है।

मैंने भी समय-समय पर दाढ़ी बढ़ाई है तथा जिस दौरान दाढ़ी मेरे चेहरे पर रही है, मैंने औरतों को अपने से दूर तथा आदमियों को अपने नजदीक पाया है। स्त्री प्रतिभा के विकास में बाधक होती है, यह मुनियों ने कहा और इसलिए शायद दाढ़ीवालों की प्रतिभा दाढ़ी के साथ-साथ विकसित होती रही है। गौतम बुद्ध ने कहा था कि स्त्रियों को अपने से दूर रखो। कैसे रखो यह उन्होंने नहीं बतलाया था। यह मैं बतलाता हूं। दाढ़ी रखो इससे औरतें दूर रहेंगी—जैसे ओडोमॉस लगा लेने से मच्छर दूर रहता

है। दूसरी ओर आदमी नजदीक आएगा। आदमी लोग इसलिए नजदीक आते हैं कि वे पास आकर पहचानने की कोशिश करते हैं कि यह आदमी कौन है। जाहिर है कि दाढ़ी रख लेने से आपका आकर्षण समाज में बढ़ता है और लोग आपमें रुचि लेते हैं।

आजकल मैं फिर दाढ़ी बढ़ाने की सोच रहा हूँ। बचपन की वह अभिलाषा कि बड़ा होकर दाढ़ी रखूंगा, अब फिर जोर मार रही है। वैसे मित्र लोग कहते हैं कि दाढी रख लेने मात्र से बड़े नही हो जाओगे, मगर मैं कहता हूँ कि कोशिश कर लेने में क्या हर्ज है। आखिर कोशिश करके भी लोग बड़े बने हो हैं। या नहीं भी बने हैं, थोड़ी देर ही सही बड़ा होने का वहम तो पैदा करते ही रहे हैं। वैसे बुजुर्गों की सलाह यह है कि दाढ़ी रखनी हो तो पेट में रखो। आजकल सफल वह होता है जिसके पेट में दाढ़ी होती है। चेहरे पर रखने से कुछ नही होगा। मगर चूंकि बुजुर्गों की सलाह मानने का आजकल फैशन नहीं है, मैं चेहरे पर ही उगाने जा रहा हूँ।

स्कूल में मैंने निराला, पंत, महादेवी वगैरह को पढ़ा। उनकी तस्वीरें देखीं। हमारे मास्साब जो खुद भी दाढ़ी रखते थे उनकी राय में निराला सर्वश्रेष्ठ थे। इसके कारण उन्होंने दो बतलाए थे। एक तो उनकी कविताएँ बाकी लोगों से दमकार थीं तथा दूसरे वे दाढ़ी रखते थे। पंत के बाल हालांकि लंबे थे मगर दाढ़ी दाढ़ी होती है और सर के बाल तथा दाढ़ी के बालों में फर्क होता है। मास्साब की राय में बाल बांका करनेवाली कहावत दाढ़ी के बालों से चली थी और बाकी कवि लोग इसलिए दाढ़ी नहीं रखते थे कि उन्हें अपना बाल बाँका हो जाने का भय रहता था।

कविताएँ मास्साब भी करते थे तथा कहते थे कि दाढ़ी कवित्व की प्रेरक होती है। वाल्मीकि जो इतने बड़े कवि हो गए थे, उसका मूल कारण यही था कि उन्होंने दाढ़ी रख ली थी। यह दाढ़ी उन्होंने नारद की सलाह पर रखी थी जिन्होंने यह कहा था कि दाढ़ी रख लेने से उन्हें दो लाभ होंगे—एक तो वे कवि हो जाएँगे तथा दूसरे वे पुलिसवालों की पहचान में नहीं आएँगे तथा उन पर पिछली डकैतियों के मामले कायम नहीं हो पाएँगे।

इधर कुछ दाढ़ीवालों के विचार जानकर मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि दाढ़ी विकास में मददगार होती है। नए-नए छोकरे जिन्होंने अभी कल ही कविता लिखना शुरू किया है, दाढ़ी रख लेने के बाद प्रतिष्ठित कवि लगने लगते हैं। नए राजनीतिक कार्यकर्ता घाघ राजनीतिज्ञ होने का वहम देते हैं। 'साप्ताहिक लात घूँसा' किस्म के अखबारों के संपादक प्रखर चिंतक होने का असर छोड़ते हैं। दाढ़ी उमर छिपाती है। चेहरे के ऐब छिपाती है—यदि ज्यादा घनी हो जाए तो पूरा चेहरा छिपा देती है।

मैंने भी समय-समय पर दाढ़ी बढ़ाई है तथा जिस दौरान दाढ़ी मेरे चेहरे पर रही है, मैंने औरतों को अपने से दूर तथा आदमियों को अपने नज़दीक पाया है। स्त्री प्रतिभा के विकास में बाधक होती है, यह मुनियों ने कहा और इसलिए शायद दाढ़ीवालों की प्रतिभा दाढ़ी के साथ-साथ विकसित होती रही है। गौतम बुद्ध ने कहा था कि स्त्रियों को अपने से दूर रखो। कैसे रखो यह उन्होंने नहीं बतलाया था। यह मैं बतलाता हूँ। दाढ़ी रखो इससे औरतें दूर रहेंगी—जैसे ओडोमॉस लगा लेने से मच्छर दूर रहता

है। दूसरी ओर आदमी नजदीक आएगा। आदमी लोग इसलिए नजदीक आते हैं कि वे पास आकर पहचानने की कोशिश करते हैं कि यह आदमी कौन है। जाहिर है कि दाढ़ी रख लेने से आपका आकर्षण समाज में बढ़ता है और लोग आपमें रुचि लेते हैं।

आजकल मैं फिर दाढ़ी बढ़ाने की सोच रहा हूँ। बचपन की वह अभिलाषा कि बड़ा होकर दाढ़ी रखूँगा, अब फिर जोर मार रही है। वैसे मित्र लोग कहते हैं कि दाढ़ी रख लेने मात्र से बड़े नहीं हो जाओगे, मगर मैं कहता हूँ कि कोशिश कर लेने में क्या हर्ज है। आखिर कोशिश करके भी लोग बड़े बने ही हैं। या नहीं भी बने हैं, थोड़ी देर ही सही बड़ा होने का वहम तो पैदा करते ही रहे हैं। वैसे बुजुर्गों की सलाह यह है कि दाढ़ी रखनी हो तो पेट में रखो। आजकल सफल वह होता है जिसके पेट में दाढ़ी होती है। चेहरे पर रखने से कुछ नहीं होगा। मगर चूँकि बुजुर्गों की सलाह मानने का आजकल फैशन नहीं है, मैं चेहरे पर ही उगाने जा रहा हूँ।

राणा साँगा का बयान

जी भाई साहब ! आपके कहने से मैं भिड़ तो जाऊँ उन लोगों से। मगर कल को जब वे मुझमें लातें ही लातें मारेंगे तो आप बचाने आएँगे ? नहीं आएँगे भाई साहब ! आप दूर खड़े रहकर मजा लेंगे। मेरे बुजुर्गों ने मुझसे बार-बार कहा था कि बेटा, जिसकी लात में दम हो उससे कभी मत भिड़ना। और जिससे भिड़ना उससे खुद ही भिड़ना, किसी के कहने पर मत भिड़ना। फिर भी मैं भिड़ा। अनेक बार भिड़ा। मगर हुआ क्या ? हर बार दस लातें खाकर 'चाईं-चाईं करता हुआ' वापस आ गया और महीनों अपने जख्मों को चाट-चाटकर सहलाता रहा। अब मेरे पूरे बदन पर जख्म हैं और आप मुझसे कह रहे हैं कि मैं फिर भिड़ जाऊँ ? भाड़ में गई भाई साहब, ईमानदारी। ये दाएँ गाल पर जख्म देख रहे हैं न यह उसी ईमानदारी का नतीजा है। आपने कहा था कि मुझे बेईमानी के खिलाफ बोलना चाहिए भाईजान, मैंने मुंह खोला भर था कि ईमानदारी के साथ मुंह पर वो घूंसे दिए गए वो घूंसे दिए गए कि अंदर के चार दांत जबड़े के भीतर छुप गए और बाकी के चार गालों को छेदते हुए बाहर आ गए। दांतों की ब्यूटी भी गई, गालों की ब्यूटी भी गई। मुकदमा उन लोगों पर इसलिए नहीं चल सका कि मुझे दफा तीन सौ पच्चीस के जो घाव पहुंचे थे, वे मेरे अपने ही दांतों से पहुंचे थे। मेरे मुंह पर चोट मेरे अपने मुंह द्वारा पहुंचाई गई थी। देखा आपने मुंह खोलने का नतीजा। आप मजा लेते रहे। कहते रहे कि लाख तक-

लीकें आएं, ईमानदारी के पक्ष में बोलना आदमी का फर्ज है। लोग मर जाते हैं, मगर अपने फर्ज का निर्वाह करते हैं। मेरा तो केवल मुंह ही टूटा है।

ठीक है भाई साहब ! आपने रिश्वतखोरी के खिलाफ मुझे उकसाया था न ? मेरे साथ पचास आदमी भी लगा दिए थे कि ये अन्याय से लड़ने में मेरे साथी होंगे। सबकी जेब में आपने एक-एक कलम और दो-दो दस्ता कागज खोंस दिया था। माई-बाप, आपके इन हथियारों से लैस होकर मैं नारे लगाना और आपके पचास भकुओं से नारे लगवाना रिश्वतखोर के घर तक पहुँचा भर था कि निकल आए ये हैड़ मौ लोग अदर से और दे डंडे, दे लातें, दे जूते। सब मैंने अकेले खाए। आपके उन पचास सत्यवादियों का कहीं पता नहीं था। पता लगा कि वे आक्रमण हो, इससे पहले ही पलायन कर गए थे। बल्कि उनमें से कुछ मौका देख मारनेवालों में शामिल हो गए थे और सर्वाधिक चोट वे ही पहुँचा रहे थे। अब बोलो आप, किसके लिए बोलें ? सारा ठेका क्या हमीं ने ले रखा है ? मगर हम हैं कि आपके बहकावे में आ जाते हैं, बार-बार आते हैं।

अब ये तो। ये पीठ पर लट्ठ का घाव देखो। आपने कहा था न कि वो मुहल्ले के नुक्कड़ पर रहनेवाली लड़की कुलटा है। रही आती भाई साहब, वह। आपका क्या बिगाड़ रही थी ? मगर नहीं। आपको मजा लेना था न। आपने माहौल बनाया। हम जैसे दो-चार लोगों को बुलवाया जो अपनी मानसिक अपरिपक्वता की वजह से जल्दी ताव खा जाते थे। आपने वो भाषण खींचा कि हमें लगा पूरा मुहल्ला, मुहल्ला तो क्या पूरे शहर की इज्जत, बल्कि पूरे प्रांत की इज्जत, या कि पूरे देश का इज्जत, पूरे संसार की इज्जत खतरे में है। वह लड़की और उसके चाहनेवाले कबाड़ा किए दे रहे हैं पूरी मानवता की नैतिकता का। भिड़ा दिया भाई साहब, आपने उन लोगों से हमको। यहाँ भी आपकी सच्चरित्रता के सिपाही, जो मार पड़नी शुरू हुई कि भग लिए। पिटता रहा मैं चुपचाप। निकल आए थे भाई साहब, उस कुलटा के ग्राहक मेरे प्राणों के ग्राहक बनकर। आपने यह तो बताया नहीं था कि उसके ग्राहकों में फलां 'साहब' भी हैं, अमुक 'काका जी' भी हैं, तमुक 'सर' भी हैं, गमुक 'सेठ जी' भी हैं। हुजूर, व्यभिचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अनाचार से लड़ देना आसान है, इन साहबों,

राणा साँगा का बयान

जी भाई साहब ! आपके कहने मे मैं भिड़ तो जाऊँ उन लोगों से। मगर कल को जब वे मुझमें लातें ही लातें मारेंगे तो आप बचाने आएँगे ? नहीं आएँगे भाई साहब ! आप दूर खड़े रहकर मजा लेंगे। मेरे बुजुर्गों ने मुझसे बार-बार कहा था कि बेटा, जिसकी लात में दम हो उससे कभी मत भिड़ना। और जिससे भिड़ना उससे खुद ही भिड़ना, किसी के कहने पर मत भिड़ना। फिर भी मैं भिड़ा। अनेक बार भिड़ा। मगर हुआ क्या ? हर बार दस लातें खाकर 'चाईं-चाईं करता हुआ' वापस आ गया और महीनों अपने जख्मों को चाट-चाटकर सहलाता रहा। अब मेरे पूरे बदन पर जख्म हैं और आप मुझसे कह रहे हैं कि मैं फिर भिड़ जाऊँ ? भाड़ में गई भाई साहब, ईमानदारी। ये दाएँ गाल पर जख्म देख रहे हैं न यह उसी ईमानदारी का नतीजा है। आपने कहा था कि मुझे बेईमानी के खिलाफ बोलना चाहिए भाईजान, मैंने मुँह खोला भर था कि ईमानदारी के साथ मुँह पर वो घूँसे दिए गए वो घूँसे दिए गए कि अंदर के चार दाँत जबड़े के भीतर छुप गए और बाकी के चार गालों को छेदते हुए बाहर आ गए। दाँतों की ब्यूटी भी गई, गालों की ब्यूटी भी गई। मुकदमा उन लोगों पर इसलिए नहीं चल सका कि मुझे दफा तीन सौ पच्चीस के जो घाव पहुँचे थे, वे मेरे अपने ही दाँतों से पहुँचे थे। मेरे मुँह पर चोट मेरे अपने मुँह द्वारा पहुँचाई गई थी। देखा आपने मुँह खोलने का नतीजा। आप मजा लेते रहे। कहते रहे कि लाख तक-

लौटें आएं, ईमानदारी के पक्ष में बोलना आदमी का फर्ज है। लोग मर जाते हैं, मगर अपने फर्ज का निर्वाह करते हैं। मेरा तो केवल मुंह ही टूटा है।

ठीक है भाई साहब! आपने रिश्वतखोरी के खिलाफ मुझे उकसाया था न? मेरे साथ पचास आदमी भी लगा दिए थे कि ये अन्याय से लड़ने में मेरे साथी होंगे। सबकी जेब में आपने एक-एक कलम और दो-दो दस्ता कागज खोंस दिया था। माई-बाप, आपके इन हथियारों से लैस होकर मैं नारे लगाता और आपके पचास भकुओं से नारे लगवाता रिश्वतखोर के घर तक पहुँचा भर था कि निकल आए थे डेढ़ सौ लोग अंदर से और दे डंडे, दे लातें, दे जूते। सब मैंने अकेले खाए। आपके उन पचास सत्यवादियों का कहीं पता नहीं था। पता लगा कि वे आक्रमण हो, इससे पहले ही पलायन कर गए थे। बल्कि उनमें से कुछ मौका देख मारनेवालों में शामिल हो गए थे और सर्वाधिक चोट वे ही पहुँचा रहे थे। अब बोलो आप, किसके लिए बोलें? सारा ठेका क्या हमी ने ले रखा है? मगर हम हैं कि आपके बहकावे में आ जाते हैं, बार-बार आते हैं।

अब ये तो। ये पीठ पर लट्ठ का घाव देखो। आपने कहा था न कि वो मुहल्ले के नुक्कड़ पर रहनेवाली लड़की कुलटा है। रही आनी भाई साहब, वह। आपका क्या बिगाड़ रही थी? मगर नहीं। आपको मजा लेना था न। आपने माहौल बनाया। हम जैसे दो-चार लोगों को बुलवाया जो अपनी मानसिक अपरिपक्वता की वजह से जल्दी ताव खा जाते थे। आपने वो भाषण खींचा कि हमें लगा पूरा मुहल्ला, मुहल्ला तो क्या पूरे शहर की इज्जत, बल्कि पूरे प्रांत की इज्जत, या कि पूरे देश का इज्जत, पूरे संसार की इज्जत खतरे में है। वह लड़की और उसके चाहनेवाले कबाड़ा किए दे रहे हैं पूरी मानवता की नैतिकता का। भिड़ा दिया भाई साहब, आपने उन लोगों से हमको। यहाँ भी आपकी सच्चरित्रता के सिपाही, जो मार पड़नी शुरू हुई कि भग लिए। पिटता रहा मैं चुपचाप। निकल आए थे भाई साहब, उस कुलटा के ग्राहक मेरे प्राणों के ग्राहक बनकर। आपने यह तो बताया नहीं था कि उसके ग्राहकों में फलां 'साहब' भी हैं, अमुक 'काका जी' भी हैं, तमुक 'सर' भी हैं, गमुक 'सेठ जी' भी हैं। हुजूर, व्यभिचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अनाचार से लड़ लेना आसान है, इन साहबों,

राणा साँगा का बयान

जी भाई साहब ! आपके कहने मे मैं भिड़ तो जाऊँ उन लोगों से। मगर कल को जब वे मुझमें लातें ही लातें मारेंगे तो आप बचाने आएँगे ? नहीं आएँगे भाई साहब ! आप दूर खड़े रहकर मजा लेंगे। मेरे बुजुर्गों ने मुझसे बार-बार कहा था कि बेटा, जिसकी लात में दम हो उससे कभी मत भिड़ना। और जिससे भिड़ना उससे खुद ही भिड़ना, किसी के कहने पर मत भिड़ना। फिर भी मैं भिड़ा। अनेक बार भिड़ा। मगर हुआ क्या ? हर बार दस लातें खाकर 'चाईं-चाईं करता हुआ' वापस आ गया और महीनों अपने जख्मों को चाट-चाटकर सहलाता रहा। अब मेरे पूरे बदन पर जख्म हैं और आप मुझसे कह रहे हैं कि मैं फिर भिड़ जाऊँ ? भाड़ में गई भाई साहब, ईमानदारी। ये दाएँ गाल पर जख्म देख रहे हैं न यह उसी ईमानदारी का नतीजा है। आपने कहा था कि मुझे बेईमानी के खिलाफ बोलना चाहिए भाईजान, मैंने मुंह खोला भर था कि ईमानदारी के साथ मुंह पर वो घूंसे दिए गए वो घूंसे दिए गए कि अंदर के चार दांत जबड़े के भीतर छुप गए और बाकी के चार गालों को छेदते हुए बाहर आ गए। दांतों की ब्यूटी भी गई, गालों की ब्यूटी भी गई। मुकदमा उन लोगों पर इसलिए नहीं चल सका कि मुझे दफा तीन सौ पच्चीस के जो घाव पहुँचे थे, वे मेरे अपने ही दांतों से पहुँचे थे। मेरे मुंह पर चोट मेरे अपने मुंह द्वारा पहुँचाई गई थी। देखा आपने मुंह खोलने का नतीजा। आप मजा लेते रहे। कहते रहे कि लाख तक-

सीफ़ें आएँ, ईमानदारी के पक्ष में बोलना आदमी का फर्ज है। लोग मर जाते हैं, मगर अपने फर्ज का निर्वाह करते हैं। मेरा तो केवल मुँह ही टूटा है।

ठीक है भाई साहब! आपने रिश्वतखोरी के खिलाफ मुझे उकसाया था न? मेरे साथ पचास आदमी भी लगा दिए थे कि ये अन्याय से लड़ने में मेरे साथी होंगे। सबकी जेब में आपने एक-एक कलम और दो-दो दस्ता कागज़ खोंस दिया था। भाई-बाप, आपके इन हथियारों से लैस होकर मैं नारे लगाता और आपके पचास भकुओं से नारे लगवाता रिश्वतखोर के घर तक पहुँचा भर था कि निकल आए थे डेढ़ सौ लोग अंदर से और दे डंडे, दे लातें, दे जूते। सब मैंने अकेले खाए। आपके उन पचास सत्यवादियों का कहीं पता नहीं था। पता लगा कि वे आक्रमण हो, इससे पहले ही पलायन कर गए थे। बल्कि उनमें से कुछ मौका देख मारनेवालों में शामिल हो गए थे और सर्वाधिक चोट वे ही पहुँचा रहे थे। अब बोलो आप, किसके लिए बोलें? सारा ठेका क्या हमीं ने ले रखा है? मगर हम हैं कि आपके बहकावे में आ जाते हैं, बार-बार आते हैं।

अब ये तो। ये पीठ पर लट्ठ का घाव देखो। आपने कहा था न कि वो मुहल्ले के नुक्कड़ पर रहनेवाली लड़की कुलटा है। रही आती भाई साहब, वह। आपका क्या बिगाड़ रही थी? मगर नहीं। आपको मजा लेना था न। आपने माहौल बनाया। हम जैसे दो-चार लोगों को बुलवाया जो अपनी मानसिक अपरिपक्वता की वजह से जल्दी ताव खा जाते थे। आपने वो भाषण खींचा कि हमें लगा पूरा मुहल्ला, मुहल्ला तो क्या पूरे शहर की इज्जत, बल्कि पूरे प्रांत की इज्जत, या कि पूरे देश की इज्जत, पूरे संसार की इज्जत खतरे में है। वह लड़की और उसके चाहनेवाले कबाड़ा किए दे रहे हैं पूरी मानवता की नैतिकता का। भिड़ा दिया भाई साहब, आपने उन लोगों से हमको। यहाँ भी आपकी सच्चरित्रता के सिपाही, जो मार पड़नी शुरू हुई कि भग लिए। पिटता रहा मैं चुपचाप। निकल आए थे भाई साहब, उस कुलटा के ग्राहक मेरे प्राणों के ग्राहक बनकर। आपने यह तो बताया नहीं था कि उसके ग्राहकों में फलाँ 'साहब' भी हैं, अमुक 'काका जी' भी हैं, तमुक 'सर' भी हैं, गमुक 'सेठ जी' भी हैं। हुजूर, व्यभिचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अनाचार से लड़ देना आसान है, इन साहबों,

काकाजियों, सरों और सेठजियों से लड़ना आसान नहीं है। चारों तरफ से वो पड़े कि आज तक याद हैं। शायद इसी मजबूरी के तहत महात्मा गांधी ने कहा था कि बेटा, पाप से नफरत करो, पापी से नहीं। यानी भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलो, भ्रष्टाचारी के खिलाफ नहीं, नहीं तो वह बहुत मारेगा। मगर आप तो गांधीवाद को नहीं मानते न। आपने कहा कि सबको जूते लगाकर ठीक करो। भाई साहब, बदले में वे हमें जूते लगाकर ठीक करने लगें, तब हम क्या करें यह आपने नहीं बतलाया—यह जानते हुए भी कि उनके पैरों में जो जूते हैं, वे ज्यादा मजबूत, टिकाऊ और मोटे तल्लेवाले हैं। जो आवाज कम करते हैं मगर चोट ऐसी देते हैं कि उसका मजा वही जान सकता है जिस पर पड़ चुकी होती है।

कितने घाव बतलाएं? आपने कहा था न कि रामप्रसाद और गंगाप्रसाद पुलिसवाले तंग करते हैं लोगों को। माई-बाप वे पुलिसवाले हैं, तंग कर सकते हैं लोगों को। अनेक पद, महकमे और नौकरियां होती हैं ऐसी कि वहां बैठे लोग अगर चाहें तो तंग कर सकते हैं लोगों को। इसमें आपका क्या जा रहा था? तंग करनेवाले कर रहे थे, तंग होनेवाले हो रहे थे। मगर नहीं। आपने कहा कि इनके खिलाफ बोलो। बोले भाई साहब! मगर क्या हुआ? रामप्रसाद और गंगाप्रसाद ने एक दिन अंधेरे में घर लिया और जेब में अफीम की पोटली डालकर तस्करी के आरोप में ले गए तथा अतिथिगृह में ले जाकर, कंबल उढ़ाकर वो दिए कि आज तक हड्डियां दुख रही हैं। वह अफीम की पोटली भी छीन ली अन्यथा उसी को खाकर गम गलत करते। जब बादल कड़कड़ाते हैं न भाई साहब, तब ये हड्डियां अन्दर से दरकती-सी महसूस होती हैं। कह रहे थे पुलिसवाले कि अपन तो कंबल उढ़ाकर मारते हैं ताकि चोट पता न लगे। देखनेवाले को चोट कहीं न दिखे पता लगे तो केवल चोट खानेवाले को ही लगे। आपने भी कहा था कि मारने का यह तरीका अपनाओ। कंबल उढ़ाकर मारो। बात को लागलपेट के साथ कहो। मगर भाई साहब, बात को लागलपेटकर कहने में एक तो बात समझ में आती नहीं है और समझ में आ भी आए तो उसका कोई असर होता नहीं है। दूसरा तरीका बात को सीधे-सीधे कह देने का है तो उसका परिणाम आप मेरी

पीठ पर देख ही रहे हैं। एवस-रे करवाकर दे दूं भाई मियाँ! एक सौ आठ हड्डियों में एक हजार आठ दरारें न दिखाई दें तो फिर कहना। शायद लोग '108 श्री' या '1008 श्री' इसी तरह बनते होंगे।

भाई साहब, आपने एक व्यवस्था की दीवार मुझे बतलाई थी न? और कहा था कि अंदर बैठे लोगों ने खा-खाकर इसे पोला कर दिया है। आपने अंदर से आती 'खुट-खुट', 'कुट-कुट' की आवाज भी बतलाई थी कि ये कुतरकर खाने की आवाज है। मैंने कहा था श्रीमान कि अंदर संभवतः निर्माण कार्य चल रहा है और यह आवाज कुतरकर खाने की नहीं, छेनी-हथौड़ी की आवाज है। कुछ और पत्थर तराशे जा रहे हैं ताकि दीवार को मजबूती दी जा सके। मगर नहीं। आपने उकसाया कि दीवारें पोली की जा चुकी हैं और अगर मैं अपना सर उस पर मार दूं तो भरभराकर गिर पड़ेगा भ्रष्टाचार का ढांचा। मैंने फिर कहा था कि सरकार, इसे टटोलकर देख लें अपने हाथों से, तो आपने कहा कि तुम लोग दिमाग से काम लेनेवाले लोग हो, इस पर सर की चोट मारो, मस्तक की चोट मारो, मस्तिष्क की चोट मारो। मारी भाई साहब! जो मस्तिष्क अपना 'भला-बुरा' सोचने के लिए खुदावंद करीम ने दिया था, उससे चोट मारी। मेरेसाथ और भी लोगोंने मारी। जो लोग समझदार थे उन्होंने धीमे चोट मारी। शायद आजमा रहे थे बिल्डिंग की मजबूती को। मगर मैं बेवकूफ था। मैंने कस के दे मारा सर। सर की हड्डी में छः जगह छेद और चार जगह दरारें हो गईं श्रीमान! दीवार जहाँ की तहाँ थी, उसका कुछ नहीं बिगड़ा। मैं पहले ही कह रहा था कि पत्थर कितना ही पोला हो जाए, रहता फिर भी पत्थर है। मगर आप मानें तब न। जब मैं सर में पट्टा बाँधकर आपके सामने पहुँचा, आपने फिर आनंद लिया। आप ठहाका मारकर हँसे। उधर बिल्डिंग के अंदर बैठे लोग जो छज्जे पर से यह तमाशा देख रहे थे, वे भी हँसे। वे लोग भी कह रहे थे कि हम बहुत दिनों से अपनी दीवार की मजबूती परखना चाहते थे। इस आदमी की खोपड़ी फूटने से अंदाजा हो गया कि दीवार, खोपड़ी की तुलना में ज्यादा मजबूत है—जो कि हमेशा होती है—और हम इस बात पर अपने ठेकेदार को तो पुरस्कृत करेंगे ही, इस आदमी का भी अभिनंदन करेंगे। अब इससे पहले कि मैं लालच से उन

लोगों की ओर देखूं, आप मुझे फिर घसीटकर सड़क पर ले आए थे और वस्ती के मकानों में जगह-जगह छेद वतला रहे थे।

आपने कहा था कि वो देखो दस जगह छेद हैं। भाई साहव, छेद तो सौ जगह थे और वे मुझे सव दिखाई दे रहे थे मगर मेरे वदन पर अस्सी चोटों को आप नहीं देख रहे थे। मेरी एक आँख गायव थी, एक जवड़ा नदारद था। छाती, पीठ, गले, जाँघ, कमर, सर, सव जगह घाव थे। मैं राणा साँगा हो चुका था। पूरा राणा साँगा। वदन का कोई पुर्जा ऐसा नहीं वचा था जहाँ अगली चोट सही जा सके और आप मुझे इक्यासीवीं चोट खाने के लिए उकसा रहे थे। हनुमान जी का किस्सा याद है आपको, जव वे लंका में जा रहे थे ? रास्ते में सुरसा मिली थी और उसने अपने मुँह का छेद वतलाया था। हालांकि रावण काफी सख्त और क्रूर किस्म का शासक था मगर उसके आसपास भी सुरसा जैसे छेद थे। हुआ क्या ? हनुमान जी उसे संतुष्ट करके ही आगे वढ़ सके थे और वह भी विनम्र होकर, छोटे वन कर, झुककर। मैं हनुमान तो इस जीवन में शायद न वन सकूं क्योंकि उसके लिए वहुत ऊँचे दर्जे की महानता अपेक्षित है, हाँ राणा साँगा वना रहना चाहता हूँ जो कि मैं आपकी कृपा से वन गया हूँ। मुझे राणा साँगा वना रहने दें श्रीमान ! वदन पर अस्सी चोटें काफी होती हैं। अव इक्यासीवीं के लिए, तुम्हारी कसम, कोई जगह नहीं वची है। अव न उकसाओ प्रिय ! देखो, मेरे शरीर की तरफ देखो। क्या वीरता के इतने पदक नाकाफी हैं ?

माँगीलाल मास्टर और उसका सहयोगी

करकट ने दमनक से कहा कि हे दमनक, मैं जिस काम को तुमसे कह रहा हूँ माना कि वह अनैतिक है, मगर तुम उसे कर दो, क्योंकि अगर तुमने इसे नहीं किया, तो तुम्हारी भी वही दशा होगी, जो माँगीलाल मास्टर की हुई थी।

इस पर दमनक ने करकट से कहा कि हे करकट, मुझे उस माँगीलाल मास्टर की कथा कहो।

"माँगीलाल मास्टर के पास उसका एक सहयोगी गया," करकट ने कहा, "माँगीलाल मास्टर नया-नया मास्टर हुआ था। उस वक्त नए-नए नियुक्त लोगों में जैसा उत्साह होता है, वैसा ही माँगीलाल मास्टर के अंदर उत्साह था। नई कल्पनाएँ, नई योजनाएं, कुछ नया कर डालने की ललक, अपना सबकुछ किसी महत उद्देश्य के लिए समर्पित कर डालने की उमंग। माँगीलाल मास्टर के पास जो सहयोगी गया, वह पानी में भीगी हुई, गर्मी में सूखी हुई और ठंड सह-सहकर ठिठुरी हुई लकड़ी की तरह 'सीजंड' था।

"उसके चेहरे पर अनुभव की रेखाएँ थीं। होठों पर अपनी तमाम दमित इच्छाओं, वासनाओं, कामनाओं की तृप्ति की मुस्कान थी और वह हर दुखद स्थिति में से सुख के कण निकाल लेने का आदी कहा जाता था। हालांकि यह आदमी भी माँगीलाल की तरह मास्टर था, मगर यह मानता

था कि मास्टर को ईमानदार होने की कतई जरूरत नहीं है। अगर कोई पूछता क्यों? तो वह यही जवाब देता था कि केवल मास्टर को ही क्या, किसी भी आदमी को ईमानदार होने की जरूरत नहीं है। वजह पूछने पर वह यह बतलाता था कि हालांकि वह खुद भुक्तभोगी नहीं है, क्योंकि उसने कभी ईमानदारी नहीं बरती, मगर वह ईमानदारों को लगातार कष्ट भुगतते देखता आया है।"

इस पर दमनक ने करकट को टोककर कहा कि हे करकट, मुझे इस बेईमान आदमी के चरित्र में अधिक दिलचस्पी नहीं है। तुम मुझे मांगीलाल मास्टर और उसके बीच जो हुआ, उसका विवरण दो।

इस पर करकट ने कहा, "दमनक, बेईमान आदमी के चरित्र में दिलचस्पी लेना ही दुनिया की सबसे बड़ी दिलचस्पी है। वह जो सफलताएँ पाता है, कैसे पाता है, क्या करके पाता है, इसका बारीकी से अध्ययन हर उस आदमी के लिए जरूरी है, जो सफलता का आकांक्षी है। फिलहाल मैं चरित्र के विशद विवेचन को छोड़कर मुद्दे की बात पर आता हूँ।

"तो हुआ यह कि मांगीलाल मास्टर से सहयोगी मास्टर से कहा, 'आज दोपहर एक बजकर तीन मिनट पर तुम्हारे पास परीक्षा कॉपियों का का एक बंडल आएगा। इसमें कक्षा एम. ए. पूर्वार्ध के रोल नंबर 3450 से 3650 तक होंगे। इसमें एक रोल नंबर 3551 होगा।' इतना कहकर सहयोगी मास्टर चुप हो गया।

"मांगीलाल मास्टर ने पूछा कि यह बात तो उसे खुद भी नहीं पता थी। विश्वविद्यालय परीक्षा संबंधी कार्य तो अत्यधिक गोपनीय होता है। उसे यह कहाँ से पता लगा? उसने कहा कि उसके पास एक जिप्सी की दी हुई 'क्रिस्टल-बॉल' है, जिसमें दस-बारह रुपए डालने से सब पता लग जाता है।

"मांगीलाल मास्टर को ताज्जुब हुआ। उसने कहा, 'अजीब बात है। कोई ऐसी भी 'बॉल' है, जिसमें दस-बारह रुपए डाल दो तो तमाम गोपनीय रहस्य पता लग जाते हैं!'

"सहयोगी ठहाका मारकर हँसा था। बोला, 'श्रीमान, आप बॉल पर ताज्जुब कर रहे हो, दस-बारह रुपए तो किसी भी डिब्बे में डाल दो, तो

सारे गोपनीय रहस्य टेलिविजन की तरह साफ निखर आते हैं। मगर यहाँ वजन तौलनेवाली मशीन-जैसा कायदा नहीं है कि हर वजन के आदमी के लिए दस पैसे का ही सिक्का डालो और वजन का टिकट हाजिर। रहस्य जितना मूल्यवान है उसके लिए डाला जानेवाला पैसा भी उतना ही अधिक होगा। डेढ़ हजार रुपए मासिक की नौकरी के लिए आपका सेलेक्शन हुआ कि नहीं, होगा कि नहीं, नहीं हुआ तो क्यों नहीं हुआ, होगा तो किस प्रकार होगा, वगैरह पता लगाने के लिए दस-बारह रुपए अपर्याप्त होंगे।'

" 'वह क्रिस्टल बॉल यह सब बता देती है ?'

" 'बॉल क्या ? यह तो किसी भी क्लर्क के जेब में पड़ा हुआ सुपारी का डब्बा या मरौती बतला देगी।'

" 'कैसे ?'

" 'पद्धति वही है, जो क्रिस्टल बॉलवाली है। सुपारी के डिब्बे में ऊपर ढक्कन पर टेलिविजन का पर्दा बना होगा। डिब्बे के पेंदे में पैसा डालने का खाँचा बना होगा। डिब्बा उसकी जेब में ही रखा रहने दो और एक के बाद एक करके दस-दस के, पाँच-पाँच के नोट खाँचे में घुसेड़ते जाओ। जब तक आवश्यक फीस की राशि पूरी नहीं होगी, मशीन चुप रहेगी। जैसे ही राशि पूरी होती है, डिब्बे का ऊपरी ढक्कन भक्क से टेलिविजन के पर्दे की तरह जल उठेगा और चूँकि वह रील मूक फिल्मों की तरह चुपचाप चलती है, आवाज उस आदमी के मुँह से निकलेगी, जिसकी जेब में डिब्बा रखा हुआ है।'

" 'वजन तौलनेवाली मशीन की तरह !' माँगीलाल मास्टर को कुछ ताज्जुब लगा।

" 'हाँ, वजन तौलनेवाली मशीन की तरह। खुन्नररर्-खुट की आवाज के साथ सिक्का अंदर गिरा। घुँईई के आवाज के साथ अंदर का पहिया घूमा। खुर्रक की आवाज के साथ टिकट पर वजन अंकित हुआ और टिकट छिटक कर खुड्ड्क की आवाज के साथ नीचे बने खाँचे में आ गिरा। यह पैसा डालना और अगले ही क्षण टिकट पर लिखा हुआ आपका 'वजन' और आपके 'भविष्य' की जानकारी प्राप्त हो जाना, कितना स्पष्ट है ! कितना साफ है ! वजन तौलने की मशीन के अंदर जलते-बुझते लाल-नीले बल्बों

की तरह ज्वलंत, जाज्वल्यमान ! किसी भी स्टेशन के प्लेटफार्म पर रखी हुई यह मशीन हजारों-सैकड़ों लोगों की भीड़ भड़क्के के बावजूद कैसे आपका ध्यान खींच लेती है ! आप बरबस उसकी ओर आकृष्ट होते हैं और पास जाते ही आपको एक बारीक गुप्त खाँचा दीखता है। खाँचा, जो दूर से नहीं दीखता। केवल पास जाने पर दीखता है। और मशीन आपके कान में मानो फुसफुसाकर कहती है, 'डाल, डाल पैसा खांचे में। अभी सब पता चलता है।' अंदर एक शीशा भी लगा रहता है, इस मशीन में। अगर आपके पास पैसा नहीं है, तो मशीन आपको सामने खड़ा होने से मना नहीं करेगी। आप खड़े होइए और आईने में अपना चेहरा देखकर उतर आइए। इस चेतावनी के साथ कि आइंदा श्रीमान, चेहरा निखारकर आइए और वह तभी निखर सकता है, जब आपकी जेब में पैसा हो।'

"उसके बाद सहयोगी मास्टर ने कहा कि वह अपने जीवन के आस-पास फले प्रतीकों से काफी कुछ ग्रहण करता है, सीखता है। और सफल वही है, जो जीवन के हर कदम पर कुछ न कुछ सीखने को तत्पर रहता है।"

दमनक ने फिर कहा कि करकट, माँगीलाल मास्टर और सहयोगी मास्टर के मध्य यह वार्तालाप कुछ अधिक खिंच रहा है। मुझे वार्तालाप में अधिक रुचि नहीं है। पहले तुम चरित्र-चित्रण पर जोर दे रहे थे, अब वार्तालाप में समय जाया कर रहे हो। मुझे विश्वास है कि तुम आगे वातावरण चित्रण भी करोगे तथा किसी प्रकार की चरम सीमा तक पहुँचोगे और उसके बाद एक झटके से मोड़ देकर कहानी को खत्म कर दोगे।

करकट दमनक का कटाक्ष समझ गया और बोला, "हे दमनक ! मैं तुम्हारी बात में निहित व्यंग्य को समझता हूँ। गोकि यह मानता हूँ कि व्यंग्य को समझने के लिए कुछ 'समझ' निश्चित रूप से दरकार होती है। मगर कुछ व्यंग्य इतने स्पष्ट होते हैं कि बेवकूफों की समझ में भी आ जाते हैं। कुछ लोग घटनाप्रधान चीजें पसंद करते है, कुछ विवरण-विश्लेषण प्रधान।" और उसके बाद करकट ने दमनक की उत्सुकता संतुष्ट करने के

लिए कहा कि सहयोगी मास्टर ने मांगीलाल मास्टर को रोल नंबर 3551 स्पष्ट रूप से एक परचे पर लिखकर दिया और कहा कि यह समझ लो कि यह तुम्हारे 'पिता जी' की कॉपी का रोल नंबर है। इस 'पिता' शब्द की विशद व्याख्या करना उसने आवश्यक नहीं समझा। केवल यह कहा, "याद है, परीक्षा हॉल में तुमने उस 'काका जी' को पकड़ लिया था, किताब कंपलट करते, तो क्या हुआ था?" मांगीलाल मास्टर को याद आया कि उसी शाम तीन-चार जगहों से टेलीफोन पर तबादले की धमकियां आ गई थीं। टेलीफोन ऑपरेटर उसका दोस्त था और शाम को जब वह उससे मिला था, तो बताया था कि उसने भी वे धमकियां सुनी थीं और वे धमकियां पब्लिक कॉल बूथ से नहीं दी गई थीं।

"सो हे दमनक, मांगीलाल मास्टर को उस सहयोगी मास्टर ने कहा कि वह शाम को आएगा। बंडल आने पर सबसे पहले मांगीलाल मास्टर वही रोल नंबर जांचे, जो उसने दिया है। बाकी काम बाद में। महत्त्वपूर्ण कामों को हमेशा प्राथमिकता दी जाती है, हर स्तर पर। शाम को वह आएगा और उस कॉपी के पिछले पन्ने पर बने खांचे में दस-बारह रुपए डालकर कॉपी के मुखपृष्ठ पर बने टेलिविजन के पर्दे पर परिणाम जानना चाहेगा। अगर खांचा बड़ा हुआ, तो वह अधिक से अधिक पचास रुपए डाल देगा मगर इससे अधिक नहीं। नाई नाई से बाल बनवाने का पैसा नहीं लेता। धोबी धोबी के कपड़े मुफ्त धोता है। अतः उसे आशा है कि मांगीलाल मास्टर मुफ्त में यह काम कर देगा।"

"फिर क्या मांगीलाल मास्टर ने यह काम किया?" दमनक ने पूछा।

"इस बात की मुझे जानकारी नहीं दमनक!" करकट ने कहा, "केवल इतना भर बता सकता हूं कि मांगीलाल मास्टर की उसके बाद काफी दुर्गति हुई। क्या पता सहयोगी पर उपकार कर देने की वजह से हुई कि उपकार न करने की वजह से हुई। क्योंकि कभी-कभी उपकार करने पर भी दुर्गति होती है। इसलिए मैं तुमसे जिस काम की कह रहा हूं, माना कि वह अनैतिक है, मगर तुम उसे कर दो। अगर करने के बाद तुम्हारी दुर्गति होती है, तो मान लेना कि अनैतिक काम करने से मास्टर मांगीलाल

की दुर्गति हुई होगी; और यह काम न करने पर तुम्हारी दुर्गति होती है, तो समझ लेना कि सहयोगी की सलाह न मानने के क्या दुष्परिणाम होते हैं।"

करकट ने कहानी के अंत को पहेली बना दिया था। जैसाकि कुछ पुराने कथाकार बना दिया करते थे।

कल्लू की चिट्ठी

अरी जीजी, बे उम्दा मजा आ रए हैं इते पे कि अब का बताएं। तू थाहे इते पे तो तू खुदई देख ले हे। मगत् कह रओ हतो कि जे मजा सोई लिखे हते अपनी किसमत में। जे तो मालुमई नई हतो। वो उम्दा बंगला है जामें ढेर मारे कोठा ई कोठा पवरत हैं। वे बड़े-बड़े कोठा। खूब उम्दा कलई पुते। दरवज्जन पे खूब उम्दा रंग करो है। पाल कहत हैं इते के नौकर-नौकरानी ऊखों। चमकत हैं दरवज्जा। नौकर-नौकरानी तो इत्ते मिले हैं कि अब का बताएं। कौन से नौकर से कौन सो काम करवाओ, कछु समझई नहीं आत। रोटी बनावे वारो अलग, चूल्हा जलावे वारो अलग, सब्जी लावे वारो अलग, सब्जी काटवे वारो अलग, धोवे वारो अलग और बघारवे वारो अलग। बीस-पचीसक हैं। तू मरी जात थी नई बरतन मौंज-मौंज के और दार चुरा-चुरा के। इते आ के देख है तो देख तई रह है। तो हे कछू भी नई करबो पड़ है। आराम से बैठी रहिए धूप मे बार सुखाती। दो नौकरानियें-चपरासनें मिल जेहैं तेरे बार धोवे खों और चोटी करवे खो। तेरी सौं, इते पे नौकरानियें भी तो से उम्दा कपड़ा पेहरत हैं। दो-चार तो पढ़ी-लिखी सोई बरत हैं।

मनों तू दबिये मत उन नौकरानियन से। उनसे ज्यादा लहंटिये बी मत। नई तो वे मों लग जेहैं तो तेरो आदर कम हो जे हे। जीजा कह रए हते कि अपने इस्टेनडरड के आदमियन से समपरक रखबो ठीक रहत है।

अव जे तीन कौड़ी के लोगन से अपन मों लगो तो जैसे कूकरा मों चाटत है वैसेई चाटन लगत हैं। तू तो इते पे चुप्पई-चाप रहये। हाँ वड़े अफसरन की लुगाइयें आयें, दूसरे मंतरिन की वाइयें आयें तो उनसे मिलिये-जुलिये। वड़े अफसरान की लुगाइयें इंगरेजी में गिटपिटात हैं। तू घवरइये मत। दविये वी मत। वल्कि वीच-वीच में डांट दइये। मंतरी सवसे वड़ो होत है। वे अफसरन की लुगाइयें तो से छोटी केहले हैं और तूने थोड़ी-सी डांट-डपट करी तो वे तेरे पांव पड़ के जेहैं। तेरी सों। वे रुतवा हैं इते पे जीजा के कि अच्छे-अच्छे घवड़ात हैं। जीजा ने मोसें कह के रखी है कि तो से कोई अकड़े तो हमसे वतइयो। मैंने वा थानेदार को नाम वता दओ जेने मोहे गुण्डागर्दी करत पकड़ लओ थो—अरे वो तीन साल पेहले। जीजा ने वा थानेदार को पता लगवाओ। तवादला हो गओ हतो वाको क जाने किते। जीजा ने ढुंड़वा लओ और वाहे वुला के वो झटकार दई कि सवरी थाने-दारी भूल गओ। वाद में हमसे मिलो। माँफी माँगन लगो। अव हमने कई कि अपन अव वड़े आदमी हो गए हैं, जा विचारे को काहे को दुख दयें। हमने माफ कर दओ ऊखों। पांव परन लगो वो। और ले गओ हमें खूव वड़ी होटल में। नंगी नच रई हती उते पें एक लुगाई। इंगरेजी गाना चल रओ हतो। अव जिज्जी, हमें सरम लगन लगी ऐसी वात करत। अव वाद में का भओ हम तोहे ने वतेंहें। इते पे तो वे मजा आ रहे हैं कि अव का वताएँ।

पहले हमें लगत थो कि हमने अपनी जिज्जी लवाड़ खों व्याह दई है। कक्का सोई ऐंसी ही सोचत थे। गलती सोचत हते। सांची कह रए हैं। हमें का पता हतो कि जा लवाड़ की सोई किसमत चेत जे है। सच्ची कहत हतो सनीचर पंडत कि आदमी को भाग कव चेत जाये कछू नई कह सकत। अव जीजा कह रहे हैं कि आर, तुम जरा पढ़े-लिखे होते तो हम तुम्हें सोई चिपकवा देते इते पे कोई सी नौकरी में। मनों हम का करें। हमरो मनई नई लगत हतो पढ़वे में। वैसे जीजा कह रहे हैं कि चारक साला इते पे रओ तो मेटरक, वी. ए. करवा दे हैं। कह रए हते के मास्टरन से, कालेज के परफोसरन से वुला के कह दे हैं तो वे हमरो खास खयाल रख ले हैं परकछा में और उते पे कापी फापी जांचवे में। मनों हम

कह रहे हैं जीजा से कि ऐमो कछू करो के हमें पढ़वो-अढ़वो ने पड़े और हम कहूँ फिट हो जायँ। तो उनने कई है कि कछू रस्ता निकार हैं। इनने सगे एक और आदमी मंतरी बनो हतो। बानें अपने सारे मों फिट करवा दओ एक कमेटी में। हजार-डेढ़ हजार रुपया महिना को आदमी हो गओ वो। हममें गधा हतो सारो। हमने वाको उदाहरण दओ तो जीजा ने कई कि तुमरे लायक जगा बी देख हैं। चिंता काए कर रए हो। तो हमने कई कि हम चिंता इंता नईं करें। हम तो अब पाँच साल इते पे ई डटे रह हैं तुमरी खोपड़ी पे। अब तुम्हें दिखाये सो करो।

अबे लगू आओ हतो। तुमने भेजो थो का ? कहन लगो भौजी ने भेजो है। हमने रुका लओ। आठक दिन ठहरो वो। वाहे भी सबरे नजा बताए। गदगद हो गओ। कहन लगो कि मरग मिल गओ अपन है तो। मैंने कई कि अबो देखत जाओ का का होन है। बाने कई कि उते गाँव में हल्ला उड़ो थो कि जीजा बड़े बंगला में नई रह हैं। सोफा-फोफा पे न बैठ हैं और साइकल पे दफ्तर जे हैं। हमने कई कि उड़ा दई हुइ है कोई बदमासन नें। जीजा ने कई जरूर हती कि सादगी से रह हैं। मनो अब जा को मत-लब जो थोड़ी हो गओ कि जो कह दई थी करें ही। इते पर सबरे बड़े-बड़े मकानन में रह रहे हैं। लकदक कपड़ा पहनत हैं। खूब बड़ी मोटर में चलत हैं। हवाई जहाज में उड़त हैं। तो अब जीजा का उल्लू हैं जो साइकल पे दफ्तर जे हैं। साइकल पे तो चपरासी सोई जात है। उते बाबू स्कूटर पे आत हैं। अफसर कार में जात हैं। तो जीजा का साइकल पे जे हैं। अरे वा रे यार वा ! हमने लगू से कई कि अब ऐसी बात कर हो तो हम मों टोड़ दे हैं। लँगोट सुखान लगो हतो वो घो के इते बंगला के दरवज्जा पे। हमने कई कि जे गाँव-खेड़न में चल जात है। इते जो मैलो लगोट बीच दर-वज्जा में सुखा रहे हो तो बड़े-बड़े इंजीनियर, अफसर, डाकदर जो आत हैं जीजा से मिलवे खों, वे का सोच हैं। हमने फेंक दओ लँगोट वाको। उने पे बुराई तो नईं कर रओ हतो वो हमारी। जीजा ने कह के रखी है कि अपने गाँव वारन को खूब आवभगत करो। मालपुआ खिलाओ मारो खों। खीर चटाओ तो जाके अपने क्षेत्र में बड़ाई करत घूमें। इने पे इगरेजी में इमेज कहत हैं वाहे। वाको खूब खयाल रखो जात है। तू ध्यान रखिये उते पे

जीजा की कोई बुराई करे तो। मोहे लिखिये, मैं सारे खों ठीक करवा देहों।

जिज्जी, तूने पूछी है कि जीजा खों तेरी याद आत है का? अब उन्हें फुरसत नई मिले इते पे। खूब काम रहत है। ढेर सारे कागज आत हैं दफ्तर से। एक आदमी उन कागजन खों पढ़-पढ़ के सुनात है। फिर जीजा दसखत बना देत हैं। हओ, दसखत बनान लगे जीजा। तेरी सों वे उम्दा दसखत बनात हैं। एक मासटर लगा लओ हतो, वो सिखा गओ। इंगरेजी वारे कागजन खों जीजा फेंक देत हैं। अबे एक सिकट्री आओ हतो। कछू इंगरेजी में बोलन लगो। जीजा वाके मों की तरफ देखत रए थोड़ी देर फिर वा भमूंदर झाड़ीवा की, ऐसी ऐसी सुनाई कि सारो पानी मांगन लगो। इत्ते बड़े अफसर की वा हालत कर दई जीजा ने के जैसे नाक-नथो पाड़ा रहत है नई—वाकी अपन नकेल पकड़ के रगेद-रगेद के मारत हैं और वो पनाह मांगत है। सारे जीजा के सामने पड़बे से घबरान लगे हैं अब। जीजा ने हमसें बी कह के रखी है कि कोई लकदक कपड़ा पहर के अफसर-फफसर आए तो सारे खों आठ दिन चक्कर लगवाओ, मिलबे को टैम मत दो। जब वा के मों से गरीबी टपकन लगे और वो घिघियान लगे तब जीजा से मिलवाओ। बाकी रही-सही घूरा जीजा झड़ा देत हैं। अरी अब तो तू खुदई देख ले हे। तू कहत हती कि इनसे कछू नई बने। हर कहूं से पिट-पिटा के आ जात हें। हर कोई इन्हें दबा लेत हैं। अबे तू देख है कि जीजा कैसे मरद हैं। अरी आदमी खों कुरसी तो दे के देखो, कैसो मरद हो जात है। भाई बैठक-तले कछू चइये बी तो अकड़बे खों।

तू मरी जात थी नई के कभी मोटर में नई बैठी। अरी अब हवाई जहाज में बैठ है। इते जीजा को रुआब देख के बड़े-बड़े अफसर मंडरात हैं आगे-पीछे। अभी काल-परों की बात है, बातचीत में पता लगो हतो कि वे कछू ऐसो इस्कीम बना रहे हैं कि जीजा फारेन को चक्कर मार आयें। फारेन बिदेस खों कहत हैं। अब तू मोटर तक में तो बैठी नई आय, तो तू कैसे समझ है कि फारेन का होत है। उते इंगलिस्तान हैगो। हवाई जहाज से जात हैं। मुनके दिन लगत हें रेल से जाओ तो। रेल उते पर जातई नई आय। हमने जीजा से कई के जिज्जी खों सोई ले जाने पड़ेगो साथ में। का

भरोसा उतै पे इगरेजी मेमे रहत हैं। अफसर लोग कह रए हते कि जीजा की पर्सनाल्टी उम्दा है। कहूँ कही की मेम मर भगी तो। मनों तू चिंता मत करिये। जीजा अगर तोहे नई भी ले गये तो मैं तो संगे लग ही ले हों। एक बाडीगारड सोई लगत है साथ मे जाबे खों। बा बाडीगारड की जगह मैं फिट हो ले हों। बाडीगारड खों पटा लेहों, जा कह के कि आर तुम तो कभी भी हो आओगे फारेन। हमे हो आन देओ। फिर मौका मिलो के न मिलो। अपनो खूब दोस्त हो गओ है बो। अपन ने इते पे सबसे दोस्ती कर के रखी है। हालाँकि जीजा कहत हैं कि चपडासियों खों मों मत लगाओ। मनों हम का करें, हमरे लायक इते पे कोई आदमी ही नई मिले बात करबे खों।

काल कछू पत्रकार आये हते। अरे वेई अखबार वारे। पीछे-ई लग जात हैं। पूछ रए हते जीजा से कि अब वे का का नई इस्कीमें लागू कर हैं। कछू देस में बदलबे-अदलबे के बारे में का सोच रए हैं। मूड खा डारो उनने जीजा को। बाद मे जीजा हे आ गई गुस्सा और जीजा उनई से पूछन लगे कि तुमई बताओ का करें। तो वे कहन लगे के वे अब जीजा से पूछबे आये हैं। अब मोहे लगो कि जीजा उठातई हैं टेड़पा और फोड़तई हैं मूड एकाध को। मनों उनने बड़े आदमियन घाई धीरज रखो। तेरी मों जिज्जी। और उन अखबारवालन से कही कि तुम उतई जाओ। पारटी वारो से पूछो के वे का करवो चाहत हैं। मुख्य-मंत्री से पूछो। जैसो वे कह हैं बेसोई कर हैं अपन तो। अपन अनुशासन से बाहर नई जावो चाहत। अब हम कछू को कछू कह दें और बाद मे पारटी वारे हमसें पूछें कि आर तुमने जो का कह दओ। अब असली बात का है, तू तो जानतई है जिज्जी कि जीजा जे मूड खावे बारी भ्रमटन मे नई फंसबो चाहत। उनने पेहलेई कह दई हती पारटी-वारन से कि आर हम मंतरी बनत तो हैं मनों एक शरत पे कि हमरो मूड ने ठेहो। काम-फाम अपन ने न कबी करो और न कर हे। तो पारटीवारन ने कई कि काम तो अफसर करत हैं, मातहत करत हैं। तुम काए चिंता कर रए हो। पाँच साल तक रोटी खइयो और डटे रहियो। तब जा के जीजा तैयार भए हते। अब मैं सोई संगे हतो। मोहे लग रओ हतो कि ऐंसो ने होये के जे बिल्कुलई मना कर दें कि नई हम

मंतरी नई बनें। मनों इनने मना नई करी। उते जो डर सोई लग रओ हतो कि इनसे काम-फाम नई बने तो पारटी वारे सोई मना नई कर दें। तो उनने वी मना नई करी। असल में अपने उते के इलाके से एक मंतरी इन्हें चइयेई हतो। और दूसरो आदमी जो विधायक बन के आओ है अपने उते से वो तो लीपवे को हतो और न पोतवे को। तो अब जीजा ई बचे थे उते से सबसे काबिल। अरी जिज्जी, जा वोट के चक्कर में न जाने कैसे-कैसे जीत के आ जात हैं। अब तू आहे इते पे तो तोहे सब पता चल है।

चिट्ठी को जवाब जल्दी दइये। और सबरी तैयारी करके, बिडल पेटी बांध के रखिये। नारियल की सुतली से दरी को बिडल मत बनइये। तेरे काजे इते से बिस्तर बांधवे को होलडाल जीजा ले के भेज दे हैं। सूटकेस सोई भेज हैं। नई तो तू बई दीन की पेटी में उन्हां-कपड़ा भर ले। ऐंसो मत करिए कि जीजा की नाक कटे। तेरे काजे नई मोटरकार भेज हैं जल्दी ही। वामें बैठ के आइये। संग में डिराईवर और एक चपड़ासी सोई भेज हैं। मनों तू उनसे चपड़-चपड़ मत करन लगिये। तेरी एक आदत खराब है। हर कोई से भैया-भैया करके बात करन लगत है। चुप्पईचाप रहिये। चुप रहवे में इज्जत बनी रहत है। गधा से गधा भी चुप बैठो रहे तो लोग विद्वान समझत हैं ऊखों। अब जादा का लिखूं तू खुदई समजदार हैगी।

चिट्ठी जरूर दईये।

तेरो भईया
कल्लू

हमरो नाम इते पे कलीराम हो गओ है। हालांकि जीजा कह रहे थे कि आर कछू उम्दा नाम रखो जैसे कौशल परसाद, केशव सींग वगैरा। मनों हमने कई कि कल्लू तुम्हें बुरो लगत है तो हम कलीराम भये जात हैं। बाप-दादन ने बड़े प्रेम से हमरो नांव कल्लू धरो हतो। अब हम वाहे जादा ने बदलहें। तू मो से इते कलीराम ही कइये।

प्रेम में जोखिम तत्त्व

गुलाब के फूल की तरह होती है प्रेमिका। रंग से कोई फर्क नहीं पड़ता। काला गुलाब भी खुशबू वही देता है जो कि सफेद गुलाब की होती है। वही नजाकत होती है उसमें, जो कि किसी भी दूसरे रंग के गुलाब में होनी है। राय है उन लोगों की जिन्होंने माल वापरा है और खातिरी की है। वैसे भी कहा है कि प्रेम अंधा होता है और इस मामले में महत्त्व रंग का नहीं, गंध का होता है। अंधा प्रेमी रंग पर नहीं, गंध पर जाता है। वह गुलाब देखता है, उसकी नजाकत देखता है, उसका आकर्षक आकार देखता है, उसकी गंध को अपनी नाक के नथुनों में महसूस करता है और बढ़ जाता है उस गुलाब की ओर···बगैर यह देखे कि उस गुलाब की डाली में फूल के ऐन नीचे, आगे-पीछे, अगल-बगल झाड़ियों में काँटे हैं, उसके भाई हैं, बाप है, चाचा हैं, कज़िन हैं, रिश्तेदार हैं, मुहल्लेवाले हैं, प्रशंसक हैं, प्रतिस्पर्धी हैं, जो अपने सख्त नुकीले, बिच्छू के डंक की तरह टेढ़े और पैने काँटे लिए तैयार खड़े हैं···तनिक आगे बढ़े कि चमड़ी छील देने को तैयार। बड़ी सावधानी और संयम बरतना होता है गुलाब का फूल तोड़ने में। ज़रा चूके कि चमड़ी छिली और उधड़ी!

यह चमड़ी उधेड़ने का खतरा प्रेम में कदम-कदम पर विद्यमान रहता है। एक प्रेमी ने स्वीकार किया कि वह बहुत सावधानी बरतता है। उसने अपने घर और प्रेमिका के घर के बीच की कोई दस फुट ऊँची दीवार

बतलाई, जिसे वह घटाटोप रात के घने अंधेरे में, रात के दो बजे से चार बजे के बीच, पार करता था। इधर से चढ़ता था फिर उधर से उतरता था। रात में सांप, बिच्छू वगैरह भी उधर निकलते थे, मगर उस प्रेमी के साहस को सम्मान देते थे और उसे नहीं छेड़ते थे।

"रात के दो बजे से चार बजे तक का समय ही क्यों चुना ?" यह पूछने पर उसने बतलाया कि यह वह वक्त होता है जब आदमी घोड़े बेचकर सोता है और स्त्री जागती रहती है। स्त्री घोड़े बेचकर इसलिए नहीं सोती क्योंकि आम तौर पर स्त्रियां घोड़े बेचने का व्यवसाय करती नहीं है। वैसे स्त्री अगर सोती भी रहे तो भी उसके अंदर की स्त्री फिर भी जागती रहती है। उसने कहा कि हर स्त्री के अंदर एक स्त्री होती है, और उस अंदर की 'स्त्री' के अंदर भी एक स्त्री होती है, जो रणचंडी होती है। यह रणचंडी भी कभी-कभी जाग जाती है और उस प्रेम की चेष्टा करनेवाले के लिए दुखदायी होती है। इसके बाद उसने एक पुराना श्लोक कहा, जिसका भावार्थ था कि सिंह की जटा, सांप का फन, पतिव्रता नारी की जांघों का स्पर्श आदमी जीते जी नहीं कर सकता अथवा कर ले तो जीवित नहीं रह सकता। इसके बाद उसने कहा था कि पतिव्रता स्त्री वह होती है जिसका पति (इस कदर उस पर जान न्योछावर करता है कि) 24 घंटे उसके साथ लगा रहता है, या निगरानी रखता है। उस प्रेमी ने कहा कि वह जोखिम लेता है, मगर सीमित जोखिम। पतिव्रताओं की ओर वह आंख उठाकर नहीं देखता। यह वैसे भी पाप माना गया है···और इस पाप का फल भुगतने के लिए अनेक बार अगले जन्म तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। इसी योनि में वह सहजता से उपलब्ध हो जाता है। प्रेम के लिए आदर्श नायिकाओं में, उसने बताया कि अल्पवयस्का कुमारिकाएं—जिनमें भले-बुरे की पहचान नहीं होती, वृद्धाएं—जिनकी ओर कोई अन्य प्रेमी आकृष्ट नहीं होता, कुरूपाएं —जिनके घर का रास्ता निरापद होता है, प्रोषितपतिकाएं—जिनके पति भर-बसंत में अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन प्रवास पर रहते हैं, आदर्श प्रेमिकाएं होती हैं। अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए उसने प्रेमियों के आदिगुरु वात्स्यायन के कुछ उद्धरण दिए, जिन्हें सुन कर मैं अभिभूत हुआ।

दूसरे प्रेमी ने कहा कि प्रेम के दो पहलू होते हैं—प्रेम का 'सैद्धांतिक पहलू' तथा प्रेम का 'कार्यकारी पहलू'। कार्यकारी पहलू कदम-कदम पर जोखिम से भरा है, इसलिए वह सैद्धांतिक पहलू अपनाता है जो कि प्रेम करने का सबसे निरापद रास्ता है। वह अपनी कविताओं और कहानियों में प्रेम करता है। यह पद्धति जहाँ एक ओर उसे साहित्यकारों का दर्जा दिलाती है, वहाँ दूसरी ओर अनेकानेक खतरों से भी बचाती है। वह एक प्रेमिका गढ़ लेता है और उसके साथ चलती ट्रेन में प्रेम करता है, बस में प्रेम करता है··· भले ही कितनी भीड़ हो। किसी भी पार्क में ले जाता है और प्रेम करता है। उस पार्क में उस वक्त वह किसी अन्य पात्र को नहीं रखता। केवल गुलाब की महकती क्यारियों को रखता है, शाम के झुटपुटे को रखता है, उगते हुए चाँद को रखता है, समुद्र की लहरों को रखता है, और दूर पानी में डगमगाती एक नाव को रखता है, जिसका पाल तना हुआ होता है और जिस पर एक अदद माँझी अपना गीत गा रहा होता है। प्रेमी की आर्थिक स्थिति वह अच्छी रखता है तथा प्रेमिका को अत्यन्त रूपवती रखता है। प्रेमिका के रिश्तेदारों को वह कहानी में कोई स्थान नहीं देता। पार्कों में प्रेम के अन्य बाधक तत्त्व मसलन चौकीदार, फेरी-वाले, खोमचेवाले, गश्ती पुलिसवाले, युगल को निर्जन की ओर जाते देख अकारण पीछे लग जानेवाले मनचले लोगों आदि को दूर रखता है। पकड़े जाने पर पिटने, या बाद को मुकद्दमा चल जाने के भय आदि सारी बातों को भी वह रचना से दूर रखता है और निर्द्वंद्व, निःसकोच, निर्भय प्रेम करता है। आप किसी भी असभव नायिका का हुलिया उसे बता दें, वह उससे प्रेम करके बतला देगा। साहित्यकार काफी समर्थ और ताकत-वर होता है, यह उस आदमी की बात से पता लगा।

तीसरे आदमी ने कहा कि चूँकि उसके पास पैसा नहीं है, वह प्रेम नहीं करता। बिना पैसे के प्रेम करना बहुत बडा जोखिम का काम है। "इश्क करें ऊ जिसकी जेब में माल बारे बलमूँ। और कदर गवावें जो करता कंगाल बारे बलमूँ!" उसने अपनी खस्ता माली हालत, फटे कुरते, तार-तार पाजामे, बढ़ी दाढ़ी और कीचड़ सनी आँखों की ओर इशारा करके कहा था, "हुलिए में मैं बराबर भूतपूर्व प्रेमी लगता हूँ। मगर स्थिति

यह है कि मैंने कभी प्रेम किया ही नहीं । हालांकि कुछ स्त्रियां इस प्रकार का हुलिया भी पसंद करती हैं, मगर जब इस प्रकार के प्रेमी को साड़ी-ब्लाउज, अंगूठी के बजाय, आकाश के चांद-तारे तोड़कर ला देने के लिए अभिशप्त पाती हैं तो चल देती हैं। जाहिर है कि वे अपने प्रेमी को इतनी लंबी यात्रा पर जाता हुआ नहीं देखना चाहतीं। प्रेमिका के बालों में उंगली घुमाने के लिए, भाई साहब, उसे कार में घुमाना जरूरी होता है, पार्क में घुमाना जरूरी होता है, महंगे होटलों की सैर कराना जरूरी होता है, चौपाटी पर कुल्फी खिलाना जरूरी होता है। और आप मेरी हालत देख रहे हैं !" उसने अपने पाजामे की दोनों जेबें बाहर निकालकर बतलाते हुए कहा था, "ऐसे आदमी के लिए जीवन के उदात्त मूल्यों की ओर उन्मुख होना आवश्यक हो जाता है। वह महात्मा हो सकता है, बुद्धिजीवी हो सकता है या विद्रोही हो सकता है। स्त्री का चेहरा देख पाने से वंचित आदमी शोषण देखने लगता है, अत्याचार, भ्रष्टाचार, गरीबी, भुखमरी, खून, पीब, हड्डी देखने लगता है।"

इसके बाद उसने अनेकानेक विद्रोहियों के उदाहरण दिए, जिनके जीवन में एक अदद स्त्री के प्रवेश के बाद कैसे उनका आक्रोश पानी की तरह बह गया था।

"पैसा, प्रेमिका, पद और प्रसन्नता आक्रोश की आग को ठंडा करते हैं।" इसके बाद उसने कहा कि वह पार्टी-मीटिंग में जा रहा है, जहां शोषण के कारणों पर विचार करना है, मेरा रुचि हो तो मैं भी चलूं। मैंने कहा कि मेरी रुचि फिलहाल प्रेम-प्रसंगों में है और मैं उनसे संबंधित जोखिमों पर शोध करने निकला हूं। लिहाजा मैंने कुछ कन्याओं की ओर रुख किया, जो कि शोध, विवाद, साहित्य और कलाओं की मूल होती हैं।

अनेकानेक तरह की कन्याएं मैंने देखीं। मोटरकार में अपने प्रेमी के बगल में बैठी देखीं, स्कूटर की पिछली सीट पर अपने प्रेमी की पीठ से टिकी बैठी देखीं, पार्कों में अपने प्रेमियों के हाथों से हाथ डालकर घूमती देखीं, अपने-अपने घरों की छत पर खड़ी होकर बाल सुखातीं, सड़क पर अपने प्रेमी का इंतजार करती देखीं, सिनेमाघरों की बालकनियों में प्रेमी

के साथ सिनेमा देखती देखो !···इन सबको मैंने दूर से देखा। दरअसल, मैं अपनी औकात टटोल रहा था। क्योंकि जानता था कि मामला प्रेम का हो या पद-प्रतिष्ठा का, आदमी को अपनी औकात नहीं भूलनी चाहिए। काफी कुछ जाँच-पड़ताल के बाद मैंने एक ऐसी क्यारी की ओर कदम बढ़ाया, जहाँ काँटे होने की संभावनाएँ काफी कम थीं, मगर वहाँ भी पाया कि काँटे हैं, बराबर हैं ! उस लड़की ने भी मुझसे कहा था कि कोई क्यारी ऐसी नहीं मिलेगी जहाँ काँटे न हों ! और वाकई, बार-बार उस घर का चक्कर लगाते हुए देख कुछ लोग निकल आए थे, जिन्होंने मुझसे कहा था कि मित्र, अपनी हड्डी-पसली से प्रेम करो, वह ज्यादा सार्थक है···अब इधर मंडराए तो खैर नहीं !

मैं भी सोच रहा हूँ कि युद्ध और प्रेम, केवल वीरों के करने की चीजें हैं, मैं एक अदना-सा लेखक प्रेम के सैद्धांतिक पक्ष तक ही सीमित रहूँ तो ठीक है अथवा इस सैद्धांतिक पहलू का विवेचन भी छोड़ दूँ और जीवन के उदात्त मूल्यों की ओर उन्मुख हो जाऊँ, जैसा कि मेरा वह ऊपरवाला फटेहाल मित्र हो गया था।

वह कौन था ?

उसका हर अंदाज सही बैठ रहा था। पानी का डबरा देखकर वह समझ गया था कि नायक और खलनायक उसमें घुसकर लड़ेंगे--और वे लड़े, उसी में घुसकर लड़े (हालांकि आसपास और भी काफी जगह थी)। उसे मालूम था कि मरियल-सा नायक मुस्टंडे खलनायक को पानी में पटक-पटककर मारेगा—और उसने मारा। वह जानता था कि अगले ही क्षण खलनायक पानी के डबरे से निकलकर पहाड़ी पर होगा—और वास्तव में अगले ही क्षण खलनायक पहाड़ी पर था। पहाड़ी पर एक खंडहर खड़ा था और खंडहर पर खलनायक खड़ा था। हालांकि और कोई होता तो यही अनुमान लगाता कि थोड़ी ही देर में खलनायक पर नायक खड़ा दिखेगा, लेकिन वह जानता था कि अभी इंटरवल नहीं हुआ है अतः फिल्म खिचेगी—और फिल्म खिची।

हालांकि स्थिति बड़ी तनावपूर्ण थी। सस्पेंस चल रहा था, किंतु उसका दृढ़ निश्चय था कि अब एक गाना होगा—और गाना हुआ, बरा-बर हुआ। उसे मालूम था कि चित्र की नायिका कैसी भी विचित्र परि-स्थिति में हो, इस वक्त यहाँ जरूर आएगी—और वह आई। वह जानता था कि नायक की मारपीट में फट गई कमीज को देखकर वह डर जाएगी—और वह डरी। उसे मालूम था कि इसी क्षण खलनायक नायक को नीचे पटक लेगा और एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर उसको मारने को

खड़ा हो जाएगा—और वह हुआ। बस अब नायिका के गाने की ताकत ही मरते नायक को बचा सकती है। अब उसे गाने लगना चाहिए—उसने सोचा था—और वह गाने लगी थी दरअसल गाने लगी थी :

न मारो, हाय न मारो रे
मेरे साजना को पथरवा न मारो रे
हे भगवान दौड़ो
करुणानिधान दौड़ो
यह मुआ जल्लाद मेरे साजना को मारता है
अरे जालिम तुझे मारा जहाँ धिक्कारता है
उसे क्यों मारता है ?
हाँ-आँ-आँ-आँ, हाय कुछ तो दया विचारो रे
मेरे साजना को पथरवा न मारो रे !

वह जानता था कि जब तक तीन मिनट का गाना खत्म नहीं होगा—खलनायक पत्थर को वैसे ही उठाए खड़ा रहेगा—और वह खड़ा रहा, वैसा ही खड़ा रहा। वह जानता था कि पूरा गाना खत्म होने तक नायक भी चुपचाप नीचे पड़ा रहेगा—और वह पड़ा रहा, वैसा ही पड़ा रहा। वह जानता था कि अब खलनायक नायक पर पत्थर पटक भी दे तो भी वह नहीं मरेगा। और वास्तव में खलनायक के पत्थर की चोट खाकर भी महामृत्युंजय—महामौकिया नायक नहीं मरा। पत्थर खाकर वह तत्काल उठ खड़ा हुआ।

अब पर्दे पर खंडहर के नीचे खाई दिखी थी, फिर खाई में पानी दिखा था। 'बस अब पानी में खलनायक दिखेगा'—उसकी जगह कोई और होता तो सोचता। लेकिन उसने ऐसा नहीं सोचा।

वह जानता था कि वैसा होना फिल्म का अंत होगा, जबकि डायरेक्टर अभी एक घंटे का मनोरंजन और देगा। लिहाजा खाई के पानी में खलनायक की जगह नायक होना चाहिए—और हुआ, वैसा ही हुआ। खलनायक ने नायक को हजारों फीट नीचे फेंक दिया। मगर वह जानता

था कि नायक के वदन पर खरोंच तक नहीं आनी है। वह अगले ही क्षण फिर दौड़ता हुआ ऊपर आ जाएगा—और वह आया, पानी में गिरने के के बावजूद सूखे कपड़ों में आया। उसे मालूम था कि इस वीच खलनायक, नायिका का हाथ पकड़कर रगेदता हुआ भागेगा—और वह भागा। उसे मालूम था कि नायिका अब चिल्ला-चिल्लाकर गाएगी—और नायिका ने गाया, चिल्ला-चिल्लाकर ही गाया :

आजा रे आजा मोरे वालमा
अब ना सता रे मोहे जालमा !

उधर नायक, हालांकि कोई आधा मील पीछे-पीछे भागा आ रहा था, लेकिन फिर भी उसे नायिका की दर्द भरी आवाज सुनाई दे रही थी। वह लगभग पचास मील प्रति घंटा की रफ्तार से भागते रहने के बावजूद बिल्कुल नहीं हांफ रहा था और राग बिलावल ताल तीन ताल में रॉक एन रॉल की धुन का पुट मिलाकर गाने का जवाब गाने में दे रहा था :

आ रहा हूँ मैं मोरी साजनी
मत घबराना मोरी रागनी !

उसे मालूम था कि जब तक गाना तीन मिनट तक नहीं खिंच जाएगा, नायक भागते खलनायक से काफी पीछे रहेगा—और वह रहा ! उसे मालूम था कि गाने ही गाने में दर्दभरी बातें होंगी—और हुईं, गाने ही गाने में दर्दभरी बातें हुईं :

नायिका : जालिम जमाना मोहे
ले के भागे है।
नायक : तेरा रखवाला भी तो
सोवे नहीं, जागे है।
नायिका : यह बड़ा बेदर्द है,
बरबाद ना कर दे !

नायक : इश्क तेरा मर्द है,
आजाद ना कर दे !
नायिका : तो कर दे फिर आजाद मेरे बालम
है दिले नाशाद मेरे साजना !
नायक : आ रहा हूँ मैं मोरी साजनी
मत घबराना मोरी रागनी !

उसे मालूम था कि गाना खत्म होते ही खलनायक मोटर में चढ़ जाएगा और नायिका को लेकर भागेगा। वह जानता था कि मोटर जंगल में वहीं कहीं खड़ी मिल जाएगी—और मोटर मिली, वहीं कहीं खड़ी मिली। खलनायक को बिलकुल तलाश नहीं करना पड़ा।

उसे मालूम था कि नायक को भी ईश्वर की कृपा से तत्काल एक मोटर साइकिल उपलब्ध होगी—और थी ! वास्तव में नायक को वहीं एक जोरदार मोटर साइकिल उपलब्ध थी।

वह जानता था कि काफी देर तक भागमभाग चलेगी—और काफी देर तक भागमभाग चली। फिर इंटरवल हो गया था। वह जानता था कि इंटरवल में मूंगफली, चाय, आलू, बड़े इत्यादि का सेवन कर जब दर्शक वापस हॉल में लौटेंगे तो पाएँगे कि खलनायक नायिका लेकर किसी आदिवासी गाँव में जाकर छुप गया है और नायक उस गाँव में उन्हें नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे ढूँढ रहा है। और पाया, दर्शकों ने नायक को नायिका व खलनायक को नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे ही ढूंढते पाया।

अब एक नाच होगा—उसने सोचा था—और नाच हुआ। वह जानता था कि जब नायक नाच की जगह नायिका व खलनायक को ढूँढता हुआ पहुँचेगा, वे लोग भेष बदलकर भीड़ में नाचते मिलेंगे—और वे नाचते मिले। उसे मालूम था कि नायक नायिका को दौड़कर पकड़ने के बजाय खुद भी भेष बदलकर नाचने लगेगा—और वह नाचने लगा था, सचमुच नाचने लगा था। उसे मालूम था कि यहाँ पर कोरस में गाना होगा—और कोरस में गाना हुआ :

नायिका : मोहे भगा के लाया,
नायक : मैं भी साथ में आया।
खलनायक : तेरा कर दूंगा सफाया।

और वह उठकर चला आया। मगर वह जानता था कि और कोई नहीं उठेगा—और वाकई कोई नहीं उठा। सबके सब उस महान सामाजिक फिल्म को देखते रहे।

अब आप पूछ सकते हैं कि कौन था वह ? वह कौन था जो हर होनेवाली घटना के बारे में पहले से जान जाता था ? वह कौन था, जिसका हर अंदाजा सही बैठता था ? वह कौन था, जो पैसों को पानी में फेंककर आ गया था ? कम से कम पूरी फिल्म तो देख लेता ! लेकिन हो सकता है उस गरीब को बचा-खुचा समय भी पानी में चले जाने की आशंका रही हो। वह जानता था कि फिल्म के अंत में खलनायक उसी पहाड़ी के नीचे की खाई के पानी में जाएगा—और वह गया होगा—उसका दृढ़ विश्वास है कि गया होगा। लिहाजा उसने अपने बचे-खुचे समय को पानी में जाने से बचा लिया था और आ गया था। जहाँ तक उसके 'कौन' होने का सवाल है, हो सकता है वह आम बंबइया फिल्मों का एक सामान्य-सा दर्शक रहा हो ! जी हाँ, बिल्कुल सामान्य-सा दर्शक (मगर थोड़ा समझदार)।

बरगद और बोन्साई

महान शिक्षकों से पढ़ने का अवसर मुझे नहीं मिला। जिन्होंने पढ़ाया, उनमें से अधिकांश अखिल-मुहल्लीय या अखिल-बस्तीय ख्याति के आदमी रहे। परिणाम यह हुआ कि मैं भी अपने जीवन में अधिक ऊपर नहीं उठ पाया। कहते हैं, महान शिक्षकों के छात्र भी महान होते हैं। जो शिक्षक खुद ऊपर उठ जाता है, वह अपने छात्रों को भी ऊपर उठा देता है। अपने जीवन में आगे चलकर मैं खुद भी शिक्षक बना परन्तु आज तक अपने एक भी छात्र को ऊपर नहीं उठा पाया।

ऊपर उठने के क्रम में कहते हैं, गोबर भी जब ऊपर उठता है, तो अपने साथ कुछ मिट्टी लेकर उठता है। मगर हम लोग इस मामले में गोबर से भी बदतर रहे। वैसे मेरे एक शिक्षक की राय थी कि गोबर बहुत उपयोगी चीज है और अगर कोई किसी को गोबर कहता है, तो उसमें गर्व का अनुभव करना चाहिए। ऊर्जा है गोबर, किसी प्राणी में कितनी ताकत है। यह उसकी गोबर धारण कर सकने की क्षमता पर निर्भर करता है। शरीर की असली ताकत गोबर ही होती है।

अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए वे मनुष्यों को होनेवाली डायरिया नामक बीमारी का उदाहरण देते थे कि केवल तीन दिन डायरिया भुगतने के बाद किस प्रकार बदन की सारी ताकत जाती रहती है और आदमी उठकर खड़ा होने में कमजोरी महसूस करने लगता है।

गोवर का महत्त्व बताने के वाद वे हम सव लोगों को गोबर कहते थे और हम लोग खुश होते थे। हमें खुश देखकर मास्साव कहते थे कि तुम लोग जीवन में जरूर ऊपर उठोगे, क्योंकि जिसके दिमाग में गोवर भरा हो, वह वरावर ऊपर उठता है। कारण यह है कि कालांतर में गोवर में एक कीड़ा उत्पन्न हो जाता है और यह आदमी को चैन से नहीं बैठने देता। वह कीड़ा कुलबुलाता है और आदमी लगातार कुछ न कुछ करते रहने को मजबूर हो जाता है। क्रिया की इस प्रक्रिया के दौरान वह ऐसा कुछ भी कर भागता है कि उसका नाम हो जाता है।

हमारे ये मास्साव स्थानीय शायरों में पंडित गोपाल गोबरी (जो कि वे संयोग से स्वयं थे) तथा मशहूर शायरों में चिरकीं साहव का अक्सर उल्लेख किया करते थे तथा दोनों का तुलनात्मक विवेचन करते हुए अक्सर कहा करते थे कि चिरकीं ने अपने नाम के अनुरूप स्फुट काव्य रचना की है, जबकि पंडित गोपाल गोवरी ने इस विषय पर पूरा खंड-काव्य लिखा है।

गोवर से संवंधित अनेक बातें वे हमें क्लास में नहीं वतला पाते थे। और इसके लिए वे हम लोगों से अलग एकांत में संपर्क करने को कहते थे। अच्छा पढ़ाने के अलावा मास्साव में दो-चार खूवियां ऐसी भी थीं कि आम तौर पर लड़के लोग उनसे अकेले में मिलने से कतराते थे। अपनी विशेषताओं को लेकर वे अक्सर कहा करते थे कि हर वड़े आदमी में एक-दो ऐसी खूवियां होती है और इनके वगैर वह विशिष्ट नहीं वन सकता।

वे खुद विशिष्ट नहीं वन सके, इस वात को सरे आम कुबूल करते थे और कारण उसका यह वतलाते थे कि छोटी जगह आदमी को ऊपर नहीं उठने देती। कुसूर जगह का है या आदमी का, इस पर वे अक्सर प्रकाश नहीं डालते थे, मगर इतना जरूर कहते थे कि छोटी जगह का आदमी अक्सर छोटा रह जाता है, ठीक वैसे ही, जैसे गमले में रोपा गया वरगद वौना रह जाता है।

मास्साव अपने-आपको छोटी जगह का छोटा आदमी जरूर कहते थे, मगर चिंतन के धरातल पर वे अनेक वार अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज छूते थे। वे कहते थे कि जापानी वोन्साई प्रथा, जिसमें कि गमलों में विशाल दरख्तों

की किस्मों को लगाकर बौना बनाया जाता है, उसकी मूल प्रेरणा जापानियों ने भारत से ही ली थी। उन्होंने देखा कि यहाँ छोटी जगह का आदमी बौना रह जाता है, या कि जिसे ऊपर न उठने देना हो, उसे छोटी जगह रोप दिया जाता है। आदमियों पर लागू इस प्रथा को उन्होंने पेड़ों पर आजमाया और सफल हुए।

मास्साब कहते थे कि विदेशियों ने बहुत कुछ हम भारतीयों से सीखा है। जैसे हवा में उड़ने की प्रथम परिकल्पना हमारे पूर्वजों ने ही की थी। उन्होंने कहा कि हनुमान जी पहले अंतरिक्ष यात्री थे, जो कि बिना किसी यान के उड़े थे। बाद को चलकर यानों की सहायता से दूसरे देवता लोग भी उड़ने लगे, बल्कि जो उड़ने लगे, वे देवता कहलाने लगे और यह परंपरा आज भी कायम है। निरंतर हवाई जहाजों में उड़नेवालों को यहाँ आज भी देवता का दरजा प्राप्त है। कुल मिलाकर आशय मास्साब का यह होता था कि हवा में उड़ने की मूल परिकल्पना हमारी है, जिसे विदेशियों ने उड़ा लिया।

वे उन लोगों की आलोचना करते थे, जो भारत को गोबरगंधी संस्कृति का दरजा देते थे। ऐसे लोग गोबर के महत्त्व को हल्का कूतते हैं, उनकी स्पष्ट राय थी। गाय के गोबर के एक हजार एक गुण वे गिनाते थे तथा कहते थे कि शीघ्र ही एक किताब लिखेंगे, जिसमें गाय के अलावा दूसरे प्राणियों पर भी शोधपरक सामग्री होगी।

महान चिंतकों की दृष्टि वैज्ञानिक होती है, ऐसा कहा जाता है। मास्साब स्वीकार करते थे कि उनकी दृष्टि वैज्ञानिक है, पर वे स्पष्ट कहते थे कि वे महान नहीं हैं। वैसे इसी बात से उनकी महानता टपकती थी। कहते हैं कि छोटा आदमी अपने-आपको महान करके बताता है, जब कि वास्तविक महान विनम्र होता है और अपने को अत्यंत क्षुद्र मानता है।

मैंने आरंभ में कहा कि मास्साब ने कहा था 'गोबर शक्ति है।' गोबर और शक्ति का यह संबंध बहुत बाद को चलकर लोगों के समक्ष में आया। आज जब पढ़ता हूँ कि गोबर से गैस बनती है और गैस से ऊर्जा, और वह ऊर्जा कारखाने चलाने की क्षमता पैदा कर रही है, तो लगता है कि हमारे मास्साब कितने महान थे। उन्होंने कहा था कि बरगद को गमले में

रोप दो, तो वह बौना रह जाता है। मेरा कहना है कि रहता वह फिर भी बरगद ही है।

अपने उन गुरुओं को विनम्र प्रणाम, जिन्होंने बचपन में ही हम लोगों में वे संस्कार डाले कि हम, गोबर ही सही, आज जो कुछ भी हैं, उन्हीं की बदौलत हैं। उन्होंने पैंतीस-चालीस साल पहले हम लोगों को गोबर कह दिया था और हममें ऊर्जा है, यह हमें आज जाकर मालूम हुआ।

साइकिल युग

हमारा कस्बा भी उन दिनों साइकिल युग में प्रवेश कर चुका था। तीस-पैंतीस साल पहले की बात है। तब हम लोग हाईस्कूल में पढ़ा करते थे तथा अपने घर से स्कूल तक पैदल जाते थे। साइकिल रखना उन दिनों स्टेटस सिंबल माना जाता था और चूँकि हम लोगों का कोई स्टेटस नहीं था। हम लोग किसी सिंबल में विश्वास नहीं करते थे, ठीक वैसे ही जैसे गरीब आदमी पूँजीवाद में विश्वास नहीं करता। मगर वैसे ही जैसे गरीब एक भय-मिश्रित आदर-भाव के साथ पूँजीपतियों को देखता है, उसी तरह हम लोग हर साइकिल सवार को देखा करते थे।

साइकिल सवारों की भी दो किस्में हुआ करती थीं। एक वे जो खुद की साइकिल रखते थे और चलाते थे, दूसरे वे जो किराए से साइकिल लेकर चलाते थे। किराए की साइकिलों की भी दो किस्में हुआ करती थीं—नई और खटारा। नई का प्रति-घंटा किराया ज्यादा हुआ करता था तथा पुरानी का कम। वैसे किराए की दर ही यह तय करती थी कि गाड़ी नई है या पुरानी, क्योंकि अनेक बार गाड़ी की हालत और चाल देखकर निर्णय लेना मुश्किल होता था कि यह नई है या पुरानी। वैसे किराए पर साइकिल उठानेवाले दूकान मालिक का कहना था कि नई से नई गाड़ी भी दस हाथों में पड़कर जल्दी ही खटारा हो जाती है। चीजें एक हाथ में ही ठीक रहती हैं। अपने कथन को वह जीवन के कुछ अन्य

क्षेत्रों में भी लागू करके बताता था जो कि अनुभव न होने के कारण हमें तब समझ में नहीं आता था।

साइकिल उन दिनों गाड़ी कहलाती थी, जैसे कि आजकल कार गाड़ी कहलाती है तथा जैसे कुछ दिन पहले तक स्कूटर गाड़ी कहलाता था। दस-एक साल पहले लोग मोपेड तक को गाड़ी कह देते थे जिसे सुनकर मोपेड तो खुश होती ही थी, उसका मालिक भी खुश होता था। अब किसी मोपेड को गाड़ी कह दो तो उसके मालिक को लगता है कि कहीं मजाक तो नहीं उड़ाया जा रहा है। ठीक वैसे ही जैसे किसी छोटे आदमी को सम्मान देने पर उसे सन्देह होता है कि उसके साथ मजाक तो नहीं हो रहा है? होता है सम्मान, अक्सर मजाक का भ्रम पैदा करता है, बल्कि कई बार वह होता भी शत प्रतिशत मजाक ही है। कुछ लोग मजाक को समझ जाते हैं, कुछ नहीं समझते। वैसे मजाक का मजा भी इसी में है कि कुछ लोग उसे समझें तथा कुछ न समझ पाएँ। एक मोपेड का मालिक जो मजाक समझ गया, बोला था कि जनाब, पेट्रोल से चलनेवाली हर चीज गाड़ी नहीं होती। ऐसे तो पैदल आदमी पेट्रोल पीकर चलेगा और अपने-आपको गाडी कहने लगेगा। गाड़ी वह जिसमें कम से कम चार पहिए हों।

वैसे चार पहिएवाली गाड़ियों के स्वामी भी कहते हैं कि कार जब तक नई है तभी तक उसे गाड़ी कहने की तबीयत होती है। पुरानी होते ही वह खटारा या खड़खड़िया कहलाने लगती है। ऐसा कहकर एक कार मालिक ने कार के पास खड़ी अपनी प्रौढ़ा पत्नी की ओर देखा था जिसने अपनी विशेष स्त्रैण अदा से मुँह बिचकाकर 'हुंह' कहा था और दूसरी ओर मुँह घुमाकर बोली थी कि जब चलानेवाले अनाड़ी हों तब यही होता है। बेरहमी से जिस भी मशीन के साथ पेश आओगे उसका जल्दी कबाड़ा उड़ जायेगा। वरना पुरानी चीजें तो समय के साथ बेशकीमती होते चलती हैं।

पति-पत्नी के साथ एक विचित्र बात आपने देखी होगी कि वे कभी किसी मुद्दे पर एकमत नहीं होते। एक पति कह रहा था कि अपने बीस साल के विवाहित जीवन में उसने पाया है कि साथ-साथ जिए गए अत्य-

धिक अंतरंग क्षणों में भी उसकी पत्नी चीजों के प्रति अपनी अलग राय रखती है। उसने कहा कि विवाह से पहले उसकी एक प्रेमिका थी जिसके विचार उसके विचारों से मेल खाते थे तथा उसने अनेक बार गंभीरता से सोचा है कि अपनी वर्तमान पत्नी के बजाय क्या उस प्रेमिका से विवाह कर लेना ठीक रहता ? मैंने कहा कि कुछ अनुभवी लोगों से पूछ देखो। वैसे आम धारणा यह है कि कोई स्त्री तभी तक आपकी राय से सहमत है जब तक कि वह आपकी प्रेमिका है। पत्नी होते ही प्रेमिका में भी स्वभावगत परिवर्तन आता है, ठीक वैसे ही जैसे आदमी के स्वभाव में कुर्सी पर बैठते ही परिवर्तन आ जाता है। विवाह प्रेम-विवाह हो या माँ-बाप की मरजी से तय किया हुआ, अततः होता विवाह ही है और वैवाहिक जीवन वैसा ही चलता है जैसा कि उसे चलना चाहिए।

बहरहाल, मैं कह रहा था कि तब साइकिल बाकायदा गाड़ी कहलाती थी और लोग उसे बड़े चाव से खरीदते थे। जो नहीं खरीद पाते थे, वे खरीदने की इच्छा रखते थे। कुछ लोग नगद एक मुश्त पैसा फेंककर खरीदते थे, कुछ किश्तों में खरीदते थे। बाबू लोग अपने दफ्तरों से कर्ज लेकर खरीदते थे। कर्ज की दरखास्त के साथ बाबुओं को यह प्रमाणित करना होता था कि साइकिल खरीदने से आवेदक की कार्यक्षमता बढ़ जाएगी। चूंकि रिश्वत की दरें उन दिनों काफी नीची थी, आदमी जल्दी ही आवश्यक प्रमाणपत्र भी जुटा लेता था। पिछले पैंतीस-चालीस सालों में जहाँ अन्य चीजों की कीमतें तेजी से बढ़ी हैं, रिश्वत की दरें भी आम आदमी की पहुँच से बाहर होती गई हैं। महँगाई के विरुद्ध अनेक बार आवाज उठती है मगर रिश्वत की दरें कम करने के लिए कोई प्रबल जनांदोलन अभी तक नहीं उभरा जबकि आज सर्वाधिक आवश्यकता इसी बात की है।

सौ-डेढ़ सौ रुपयों में साइकिल मिल जाती थी उन दिनों—मय घंटी, चेन-कवर, स्टैंड, कैरियर और सीट के। वैसे नंगी गाड़ी अस्सी रुपयों की होती थी मगर नंगी कोई लेता नहीं था। अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार लोग

घंटी, चेन-कवर आदि दीगर सामान लगवाते थे। नंगी न लेने का एक कारण और था और वह यह कि गाड़ी के साथ सीट नहीं आती थी। सीट की जगह एक डंडा भर निकला हुआ होता था, जिस पर बैठने की कल्पना मात्र से आदमी डरता था। चुनांचे वह आठ रुपयों की मामूली ही सही, एक अदद सीट लगवा ही लिया करता था। थोड़ा साहस करके वह बारह आने का रेक्सीन का एक कवर भी सीट पर लगवा लेता था ताकि सीट सुरक्षित रहे। यह एक दीगर बात थी कि वह कवर स्वयं सुरक्षित नहीं रहता था तथा खरीदने के दस-पंद्रह दिनों के अंदर ही अंदर किसी जरूरत-मंद द्वारा चुरा लिया जाता था।

डबल बार की साइकिल, जिसके फ्रेम में सीट और हैंडिल के बीच दो डंडे लगे हुए होते थे, तनिक महंगी आती थी और इन साइकिलों को गांव के दूधवाले खरीदा करते थे—दूध के डिब्बे टांगकर चलने के लिए। ये लोग बारिश के दिनों में आगे-पीछे के दोनों पहियों के मडगार्ड निकाल दिया करते थे। इसके दो लाभ होते थे। एक तो यह कि साइकिल के टायरों में गांव की कच्ची सड़कों का कीचड़ चिपक जाने के बाद भी साइकिल चलती रहती थी। दूसरे खुले पहियों से कीचड़ उचट-उचटकर दूधवालों के कपड़ों को भी रंगता चलता था जिससे दूधवाले दूर से पहचान में आ जाते थे।

हम लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ानेवाले मास्साब कहा करते थे कि साइकिल छात्रों के लिए सैर-सपाटे की वस्तु तथा दूधवाले के लिए उत्पादन का साधन है। इसे वे अचल पूंजी कहते थे। वे डॉक्टर की कार को भी अचल पूंजी कहते थे तथा दूधवाले की भैंस को भी अचल पूंजी कहते थे। ये चीजें चलायमान होने के बावजूद अचल कैसे हैं, यह तब हमारी समझ में नहीं आता था। मास्साब अनेक उदाहरण देकर अनेक तरीकों से हम लोगों को समझाने की चेष्टा करते थे। फिर भी समझ में न आए तो उनके पास चीजों को समझाने की एक रामबाण पद्धति थी और वह यह कि कक्षा के किसी भी एक छात्र को पकड़कर वे दो झापड़ खींच देते थे। जिसे झापड़ पड़ते थे उसे भले ही चक्कर आ जाए, बाकी लड़कों के समझ में पाठ तुरंत आ जाता था और वे आगे सवाल करना बंद कर देते थे।

मास्साब कहते थे कि अपनी अचूक रामबाण पद्धति से वे किसी भी छात्र से किसी भी सवाल का हल उगलवा सकते हैं, सवाल कितना ही कठिन हो। हमारे हेडमास्टर साहब ने उनकी यह प्रतिभा देखकर एक बार कहा भी था कि आप गलत जगह पर आ गए। आपको पुलिस में थानेदार होना था। इस पर मास्साब ने कहा था कि 'यह हमारी सामाजिक व्यवस्था का दोष है कि यहाँ अधिकांश आदमी गलत जगह पर फिट हैं। हम अपने आदमियों का सही इस्तेमाल करना ही नहीं जानते। चोरी और गिरहकटी की प्रतिभावाले राजनीति में चले जाते हैं और अच्छी राजनैतिक प्रतिभा-वाले शिक्षा संस्थानों में या सरकारी नौकरियों में। परिणाम यह होता है कि सार्वजनिक धन चोरों की जेब में जाने लगता है और शिक्षा संस्थानों तथा सरकारी नौकरियों में राजनीति चलने लगती है।

अर्थशास्त्र पढ़ानेवाले मास्साब एक टूटी खटारा साइकिल पर आया करते थे तथा कहते थे कि वे पूँजी के बारे में बहुत कुछ जानते हैं, मगर उनकी कुल जमा पूँजी वह खटारा साइकिल ही है। मुद्रा और करेंसी पर उन्होंने दो-तीन किताबें भी लिखी थीं, मगर उनसे उन्हें कोई मुद्रा और करेंसी नहीं मिली थी। वे कहते थे कि पुस्तक लेखन-प्रकाशन व्यवसाय में आम तौर पर दो चीजें प्राप्त होती हैं, एक नाम तथा दूसरा पैसा। यह सबकुछ चूंकि लेखक और प्रकाशक के संयुक्त प्रयत्नों का प्रतिफल होता है, प्राप्तियों का बँटवारा भी दोनों के बीच हो जाता है। सामान्यतः नाम लेखक के हिस्से में आता है तथा पैसा प्रकाशक के। कभी-कभी लेखक को भी थोड़ा पैसा मिल जाता है तथा कभी कभी प्रकाशक का भी थोड़ा-बहुत नाम हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे रेगिस्तान में भी कभी-कभी बारिश हो जाती है तथा चेरापूँजी में भी बरसात के सीजन में दो-चार दिन सूखे निकल जाते हैं।

कुछ इस प्रकार की बातें कर वे अपनी साइकिल की तारीफ करने लगते थे। रिटायर होने के बाद भी उन्होंने उस खटारा साइकिल को बेचा नहीं था। वे कहते थे कि आदमी को अपने बुढ़ापे के लिए कुछ न कुछ

पूंजी बचाकर रखनी चाहिए। इसके दो लाभ होते हैं। पहला यह कि जमा पूंजी आड़े वक्त काम आती है तथा दूसरा यह कि अपनी अगली पीढ़ी के लिए भी कुछ अचल संपत्ति उत्तराधिकार में छोड़ जाते हैं जो उनके कमाने-खाने का साधन बनती है।

मास्साब अपने लड़के के लिए वह साइकिल उत्तराधिकार में छोड़ गए थे। लड़का भी मास्टर हो गया है तथा उसी साइकिल पर बैठकर अर्थशास्त्र पढ़ाने जाता है। वह भी साइकिल को स्थायी पूंजी कहता है। पढ़नेवाले लड़के जिनमें से अधिकांश कारों, स्कूटरों और दीगर वाहनों से आते हैं, अक्सर समझ नहीं पाते कि साइकिल किस तरफ से पूंजी है। समझ में हम लोगों के भी नहीं आता था मगर उसका कारण यह था कि हम लोगों के पास साइकिल तक नहीं थी, समझ में इन लोगों के भी नहीं आ रहा, क्योंकि इनमें से काफी के पास साइकिल के अलावा बहुत कुछ है। मगर समाज के जो तबके अभी भी साइकिल युग में जी रहे हैं, उनके लिए तो साइकिल पूंजी है ही।

वसंत : घोंघा-वसंत

वसंत के बारे में मेरी जानकारी मात्र इतनी है कि अपने जमाने में, जबकि आदमी पर वसंत का असर होना चाहिए, मैं बराबर 'घोंघा-वसंत' बना करता था। इस घोंघा-वसंत का मतलब पूछने पर एक षोडशी ने पहले तो मेरी उमर पूछी थी फिर कहा था कि रे मूर्ख, जब हवा का रुख अचानक बदल चुका हो, जंगल-जंगल टेसू फूल रहे हों और लाल अंगारों की तरह धधकते दिख रहे हों, आमों में बौर आ चुके हों और उनकी गंध से मुनियों तक के मन डोल रहे हों, तरह-तरह के फूलों से सारी जमीन चमन की तरह लहलहा रही हो, खेतों में फसलें पक चुकी हों और तरुणी कन्याओं के कदम डावर की सीधी-सपाट सड़कों पर भी आड़े तिरछे पड़ने लगे हों; ऐसे में अगर तू सड़क पर नीची गरदन करके चलता है और कामिनी नारियों की आँखों में आँखें डालकर बात करने से डरता है तो तू घोंघा-वसंत नहीं तो और क्या है?

बस इसके बाद मेरी इस कन्या की आँखों में आँखें डालकर बात करने की हिम्मत नहीं हुई थी। अपने एक दोस्त से मैंने इस हादसे का जिक्र किया तो उसने भी कहा था कि कामनियों की आँखों में आँखें डालने से बचो। कारण पूछने पर उसने अनेक बतलाए थे जिनमें शृंगार से लेकर वीर रस की अवस्थाओं से होकर गुजरने का उल्लेख था। "हर प्रकार के हालात से होकर गुजरना होता है प्रेम करनेवाले आदमी को," उसने कहा

था, "आसान नहीं है लड़की की आँखों में गोता लगाकर वापस जीवित निकल आना। सफे के सफे रंग डाले हैं कालिदास ने, भारवि ने, भट्ट-लोलट्ट ने रमणियों की आंखों पर। एक-एक रेशे के वर्णन में छंद के छंद सर्फ हो गए हैं और रेशा जहाँ का तहाँ रहा है। अध्याय के अध्याय रंग दिए गए हैं आंख के वर्णन पर और आँख का कुछ नहीं बिगड़ा है। आखिर थक-हारकर बैठ गए हैं बड़े-बड़े कलम-योद्धा और बाद में यही कहते पाए गए हैं कि क्या करें, अभिव्यक्ति का संकट है, जो है उसे ठीक से लिख ही नहीं पा रहे हैं।"

इसके बाद मेरे उस दोस्त ने बताया था कि क्यों इस मौसम में कोट-वाले मास्साब रोज सुबह दो चम्मच डाबर-च्यवनप्राश अवलेह या कि वैद्य-नाथ-च्यवनप्राश की दो तोला मात्रा, ताजे पानी के साथ अथवा गाय के दूध के साथ सेवन करके आते हैं और गणित पढ़ाना भूलकर मदनमंजरी-रहस्य समझाने लगते हैं। किस्सा तोता-मैना और सारंगा-सदावृक्ष का उल्लेख क्यों बार-बार करते हैं और क्यों कन्याओं की बेंचों की ओर कन-खियों से देखते हुए कहते हैं कि तुम्हें हिंदी पढ़ानेवाला अध्यापक पोंगा है तथा उन्हें अगर मौका मिले तो वे पढ़ाकर बतलाएँ कि विद्यापति, बिहारी और मतिराम में क्या मजा है। और होता भी था। किसी दिन जब गणित का कोई कठिन सवाल फँस जाता था तो बोर्ड पर कोटवाले मास्साब उसे आधा ही छोड़ देते थे और कहते थे कि खिड़की के बाहर चल रही हवा को देखो—(उधर पल्लवी बहन जी अपनी ड्राइंग की कक्षा धूप में ले रही होती थीं तथा उनका मुंह बोर्ड पर बने स्केच में डूबा हुआ होता था)—और कोटवाले मास्साब हमें विद्यापति के पद सुनाते हुए कहते थे कि जब हवा चलती है तो बाल कैसे उड़ते हैं तथा साड़ी के पल्ले वगैरह की क्या स्थिति रहती है? इसके बाद वे बतलाते थे कि स्लीवलैस ब्लाउज का फैशन नया नहीं है। यह हजारों साल पहले भी था। आजकल के ब्लाउजों में बाँहें नहीं होतीं, एक जमाना था जब बाँहें तो क्या पूरे ब्लाउज ही बदन पर नहीं हुआ करते थे। इसके बाद वे पतलून-बुशर्ट के फैशन पर आ जाते थे, फिर लबादों का, बुरकों का जिक्र करते थे और फिर घूम-फिरकर ब्ला-उजों के विभिन्न रूप समझाने लगते थे। वे अक्सर कहते भी थे कि अपने

जीवन के आरंभिक वर्षों में वे दर्जी रह चुके हैं और फैशन तथा फिटिंग के बारे में जितना वे जानते हैं, शायद दूसरा कोई नहीं जानता। मास्टरी की नौकरी में आने के पहले वे दर्जी की दूकान पर कोट सिला करते थे और अपने उस कोट स्पेशलिस्ट होने की याद को बरकरार रखने के लिए ही उन्होंने अपना उपनाम 'कोटवाले' रख छोड़ा था। वे काफी मजाकिया किस्म के आदमी थे, जो यह कहते थे कि आजकल मास्टरी की नौकरी में दो ही तरह के लोग पाए जाते हैं, कोटवाले और पेटीकोटवाले। अब यह मास्टरी स्कूल की हो, कॉलेज की हो या विश्वविद्यालय की। लड़कों का रुख देखकर, अध्यापक सुरक्षा की दृष्टि से कोट पहनना आवश्यक समझता है या फिर मानसिक रूप से पेटीकोटवाला हो जाना पसंद करता है। कोट की तुलना में यह पेटीकोट अधिक सुरक्षा प्रदान करनेवाला होता है। वे कहते थे कि रिटायर होने के बाद, अगर उन्हें मौका मिला तो वे फिर दर्जी की दूकान चलाएँगे, और एक ऐसा फैशन चलाने का प्रयास करेंगे जिसमें आदमी कमर के ऊपर कोट पहने होगा और कमर के नीचे पेटीकोट। उन्होंने कहा था कि भीष्म पितामह-जैसे महाबली को हराना भी इसीलिए संभव हो सका था कि शिखंडी उनके सामने पेटीकोट पहनकर खड़ा हो गया था। आज जबकि जीवन के हर स्तर पर भीष्म पितामहों की तादाद बढ़ गई है और मरा से मरा आदमी भी अकारण वीरता दिखाने पर उतर आता है, बल्कि दिखा जाता है, और अगर आपकी कहीं कोई सुनवाई नहीं है तो आपको अपने सुरक्षा-कवच खुद पहनने होंगे।

कोटवाले मास्साब की सारी बातें हमारे समझ में नहीं आती थीं। उनसे कहो तो वे कहते थे कि बहुत-सी बातें अभी उनके खुद के भी समझ में नहीं आई हैं, मगर क्योंकि समझाना अध्यापक की मजबूरी है, वे यह काम करते हैं। तमाम इधर-उधर की बातें करके वे फिर गणित के सवालों पर आ जाते थे और थोड़ी देर गणित के सवालों में उलझने के बाद फिर वसंत की बात करने लगते थे। वैसे उनकी मेरे बारे में स्पष्ट राय थी कि मैं घोंघा-वसंत हूँ क्योंकि मैं न तो गणित के सवाल समझ पाता था और न ही किस्सा तोता-मैना, मदनमंजरी रहस्य या सारंगा सदावृक्ष। यहाँ तक कि रामवृक्ष बेनीपुरी की एक रचना जो हमारे कोर्स में थी, वह भी मेरी समझ

में नहीं आती थी। ऐसी हालत में मैं अपनी कक्षा से निकलता था और स्कूल के अहाते में लगे पीपल-वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो जाता था। पीपल के पत्ते चिकने बहुत होते हैं, तथा मैंने सुन रखा था कि जो होनहार होते हैं, उनके पत्ते आरंभ से ही चिकने होते हैं। लिहाजा मैं उन पत्तों को घूर-घूरकर देखता था और समझने की चेष्टा करता था कि होनहार होने और पत्तों के चिकने होने का क्या संबंध है ? मुझे रोज-रोज वहाँ खड़े होते देख एक दिन कोटवाले मास्साब ने बुलवा लिया था और पूछा था—

"का देख रए हते लल्ला उत्ते पे पीपल के पेड़ में ?"

"कुछ नहीं मास्साब !" मैंने कहा था।

"कछू तो। उते पे का कोई मोड़ी-ओड़ी बैठी हती पीपल पे चढ़ के ?"

"नहीं तो मास्साब !"

"वई तो हम कहें। मोड़ियें जे इते बैठी हैं मुन्ना ! इतई बैठो।"

"मगर मास्साब, मैं पीपल के पत्तों का चिकनापन देख रहा था।"

मैंने सफाई दी तो कोटवाले मास्साब ने कहा कि गणित की किताब के पन्ने ज्यादा चिकने हैं। साथ ही किसी संस्कृत के कवि की लिखी हुई चार लाइनें सुनाईं जिनका आशय था कि नायिका के सोलहवें साल में प्रवेश करते ही उसके गाल पीपल के नए पत्तों से भी ज्यादा चिकने हो गए हैं और उन पर पड़नेवाली नजरें इतनी तेजी से फिसलकर नीचे गिरती हैं कि तत्काल उसके कंधों, हाथों, कमर, टाँगों वगैरह से होती हुई उसके पैरों की अँगुलियों के अग्रभाग से जा टकराती हैं। कोटवाले मास्साब के द्वारा सुनाए गए पद के अनुसार फिसलनेवाली नजरें कंधों, हाथों, टाँगों वगैरह की यात्रा के दौरान शरीर के बाकी इलाकों का भी मुआइना करती चलती हैं जैसे रेल में बैठा यात्री खिड़की से आसपास का इलाका, गुजरते हुए स्टेशन, मकानों, खेतों वगैरह को देखता चलता है। कोटवाले मास्साब ने कहा था कि संस्कृत का यह कवि अश्लील माना जाता है और विद्यार्थियों के लिए उसे पढ़ना आवश्यक नहीं है। उन्होंने खुद भी धोखे से पढ़ लिया था क्योंकि पढ़ने से पहले पता नहीं था कि वह अश्लील है। इसके बाद कोटवाले मास्साब फिर गणित समझाने में लग गए थे तथा मैं सोचता रहा

था कि मास्साब ने जो पद समझाया उसमें रेलगाड़ी का जिक्र है। क्या संस्कृत के उस कवि के जमाने में रेलगाड़ी चलती थी। संस्कृत पढ़ानेवाले आचार्य जी से जब मैंने इस बात का उल्लेख किया तो वे बोले कि कोट-वाले को कुछ नहीं आता, संस्कृत के पद समझने के लिए कुरतेवालों की शरण गहो। आचार्य जी कुरता पहनते थे और उन्होंने अपने कुरते को झटककर, बैठते हुए, कालिदास से लेकर अपने खुद के लिखे तक सैकड़ों पद सुनाए थे जिनमें नायिका, बसंत, टेसू, आम्रमंजरी, मलय पवन, मेघ-राशि, कपोत पक्षी, नारियल फल, मधुमालती, आदि-आदि करोड़ों चीजों का जिक्र था। इसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा था कि मेरी समझ में आया क्या? मेरे नकारात्मक उत्तर देने पर उन्होंने कहा था, "समझ में आएगा कैसे? समझने के लिए अक्ल चाहिए। अपने जीवन के पचास बसंत गुजार दिए हैं हमने इतना सबकुछ समझने में, तुम तो अभी चौंधा-बसंत ही हो। समय लगेगा बसंत को समझने में बेटा, मगर तब तक तुम्हारा बसंत गुजर चुका होगा। बसंत के साथ यही विडंबना है जब तक आदमी उसे समझता-समझाता है, उसका अपना बसंत गुजर चुका होता है।"

अश्वमेध

एक ने कहा, "गुरु, यह तो ठीक है। अब वाइस चांसलर की कॉलर पकड़कर दिखाओ।"

"अभी लो," दूसरे ने कहा, "अपन उसके खानदान तक का खुलासा कर आते हैं। कोई कारण ढूंढ़ो।"

"कारण क्या? परीक्षा के तीसरे दिन परचा नीले रंग का आया था जब कि हमेशा पीले रंग का आया करता था।"

"मतलब यह हुआ कि परचा आउट ऑफ कोर्स था।"

"बराबर! यह प्रॉस्पेक्टस में कहीं नहीं लिखा था कि परचा नीले रंग का आएगा।"

"यानी अपन उस लेक्चरार को भी फँसा सकते हैं, जो साल भर पढ़ाता रहा था।"

"बराबर! साले, साल भर पढ़ाते हैं और जो मूल चीज है, उसे नहीं बताते हैं।"

"चलो, साले की कॉलर पकड़ें।"

"नहीं गुरु, लेक्चरारों की कॉलर अपन काफी पकड़ चुके हैं। अब वाइस चांसलर का पकड़ें।"

"तो चलो," कहकर तीनों रवाना हुए। साथ में दो-एक रिक्शे-तांगेवालों को भी लिया। एक-आध बिजली सुधारनेवाले को भी ले लिया।

रास्ते में दो लड़के पंचर सुधार रहे थे, उनको भी यह कहकर कि एक बड़े आदमी का पंचर सुधारना है, साथ ले लिया। इस प्रकार दस आदमियों का डेलीगेशन वाइस चांसलर के दफ्तर में पहुँचा।

जब से देश में आजादी आई है, हर मामले में आजादी आ गई है तथा फिरंगियों की परंपरा—जैसे कि किसी के घर या दफ्तर जाना, तो पूछ-कर अंदर जाना वगैरह-वगैरह, सबसे आजादी पा ली गई है। लिहाजा इन लोगों ने गुलामी की उस परंपरा का अनुसरण नहीं किया। अधिकार के साथ पर्दा हटाकर अंदर घुसे। पीछे जो लोग आए, उन्होंने पर्दा बिल्कुल ही हटा दिया तथा उसे पंचरवाले लड़के को दे दिया। उसने गोल करके अपनी कमीज के अंदर खोंस लिया—चादर का काम देगा! वाइस चांस-लर भीड़ आती देख बाथरूम में जा घुसा था। बाथरूम केबिन के अंदर ही था। डेलीगेशन ने चपरासी का कॉलर पकड़ा। चपरासी ने काँपते हुए कहा, "हुजूर, हमारा कॉलर काहे को पकड़ते हो? गरीब का कॉलर पक-ड़ने में आपको क्या मिलेगा?"

"साहब कहाँ हैं?" एक कड़कदार आवाज।

"बाथरूम में हैं।" उसने कहा।

बाथरूम का दरवाजा खटखटाया गया।

अंदर से जो आदमी निकला, वह चेहरे पर यह भाव बनाए हुए निकला कि वह वाइस चांसलर नहीं है। शायद वह मना करनेवाला ही था कि वह वाइस चांसलर नहीं है, मगर इससे पहले कि उसके मुँह से कुछ निकले, एक लड़के ने, जिसने कहा था कि वह वाइस चांसलर का कॉलर पकड़ लेगा, लपककर उसका कॉलर पकड़ लिया।

"तुम कौन क्यों रहे हो?"

"इस वक्त सारा देश आप लोगों से काँप रहा है माई-बाप! मेरा ऊपर कोई माई-बाप नहीं है। न ही नीचे कोई है। मैं त्रिशंकु हूँ, मुझे 'टेकट' से काम चलाना है।"

बिजली मेकेनिक और पंचरवालों की समझ में कुछ नहीं आया। बाजार में ऐसे हादसे वे अक्सर देखा करते थे। जिस आदमी का कॉलर पकड़ा हुआ होता था, उसने जरूर किसी की माँ-बहन छेड़ी है, यह अनुमान

कर चलते-चलते दो-एक ववसाट अपनी तरफ से भी खींच देना वे अपना धर्म समझते थे। लिहाजा बिजली मेकेनिक अपना पेंचकस लेकर वढ़ा। मगर तब तक वाइस चांसलर के दो-तीन चपरासी, बाबू वगैरह अंदर आ गए थे और उन्होंने जोर-जबरदस्ती करके वाइस चांसलर का कॉलर छुड़वाकर उसे अपनी सीट पर वैठ जाने में मदद दी। जिस लड़के ने वाइस चांसलर का कॉलर पकड़ा था, वह अपना काम कर पीछे हट गया था। उसने पहले ही कह दिया था कि वोलते उससे वनता नहीं है। कोई कारण वताने या माँग पेश करने का मौका आएगा, तो वह पीछे हट जाएगा, वोलने का काम दूसरा करेगा।

एक क्लर्क ने पूछा, "साहव, आपको वुरा तो नहीं लगा?"

"नहीं," वाइस चांसलर ने कहा, "ये लोग तो मेरे वच्चे हैं। वड़े नट-खट हैं। तुम लोग वाहर जाओ।"

जव क्लर्क-चपरासी वगैरह वाहर निकल गए, तो वाइस चांसलर ने कहा, "क्या वात है? आप लोग इतने उग्र क्यों हैं? पांडेय वेचन शर्मा 'उग्र' के वाद मैंने तुम लोगों को ही इतना उग्र देखा है। 'प्रॉवलम' क्या है?"

उत्तर में पंचरवाले और बिजली मेकेनिक आपस में एक-दूसरे की ओर देखने लगे तथा कॉलर पकड़नेवाला लड़का वाकी दो लड़कों की ओर देखने लगा। एक लड़के ने कहा, "सर···" दूसरे ने कुहनी मारी तथा कहा, "सर मत वोल।" पहलेवाले लड़के ने जवान सँभाली तथा वोला, "देखिए, 'प्रॉवलम' क्या है यह तो किसी को भी नहीं मालूम। मगर कुछ न कुछ प्रॉवलम है जरूर।"

इतने में दूसरे ने कहा, "परचा नीला आया था।"

"तो पीला आ जाएगा। हरा आ जाएगा। जैसा आप लोग चाहते हैं, वैसा आ जाएगा।"

"अभी नीला क्यों आया?" पंचर सुधारनेवाले ने कड़ककर कहा।

"गलती से आ गया माई-बाप, गलती से आ गया।"

"यह परचा फिर होना चाहिए।"

"हो जाएगा।"

"मूड खराब हो गया है। सारी परीक्षा फिर से होनी चाहिए।"

"हो जाएगी। वह भी हो जाएगी।"

"फीस वापस होनी चाहिए।"

"हो जाएगी। ब्याज समेत हो जाएगी। जो आप चाहेंगे, हो जाएगा। परीक्षा को लेकर कोई और महत्त्वपूर्ण सुझाव आपके पास हों तो आप मुझे बतलाइए। मैं उन्हें बराबर नोट करूँगा।" टेबुल की दराज खोलकर कागज-कलम निकाल लेता है, ताकि सुझाव नोट कर सकें।

डेलीगेशन के सदस्यों ने आपस में एक-दूसरे की ओर देखा और उठ खड़े हुए। जाहिर है कि वे लोग कॉलर पकड़ने आए थे, सुझाव देने नहीं। बाहर निकलकर एक ने कहा, "बोलो पार्टनर, अब किसकी कॉलर पकड़ें?"

"किसी और बड़े की कॉलर पकड़कर दिखाओ।"

"तब कारण खोजो।"

और वे कारण खोजने लगे।

मेरी चिट्ठियाँ

पत्र खोला। लिखा था :

"मेरे प्राण प्यारे !

ये मेरी तीसरी चिट्ठी है। पहले दो पत्रों का तुमने अब तक जवाब नहीं दिया मेरे राजा ! अबकी बार भी जवाब नहीं दिया तो मैं खुद आ जाऊँगी। तुम्हारी—वनमाला। तुम्हारी वो मैके से आ गई हो तो लिखना। मैं पत्र लिखना बंद कर दूंगी। फिर वोई रात के आठ बजे अपन पुल-पुख्ता के पास मिला करेंगे। जवाब को मत तरसाना।

फिर से तुम्हारी—वन्नो।"

यह वन्नो उर्फ वनमाला रहस्य को प्रकट करने के पहले यह बतला दूं कि पिछले बीस साल से यानी शादी होने के बाद अभी किसी ने मुझे 'मेरे राजा' या 'मेरे प्राण प्यारे' नहीं कहा। घर के अंदर 'ए जी', 'क्यों', 'अजी सुनते हो', 'मैं क्या कह रही हूँ' वगैरह और घर के बाहर बस में या बस की लाइन में 'जरा सरकना भाई साहब', 'सीधे खड़े रहो', 'जरा देख के चलो', 'घर में माँ-बहनें नहीं हैं ?', 'आँखें फूट गईं क्या ?' वगैरह संबोधन जरूर सुनता रहा हूँ।

पत्र पलटकर देखा। अपना नहीं था। किन्हीं बिहारीलाल नेमा का

था। ताज्जुब हुआ। मेरे और बिहारीलाल जी के नाम में न ध्वनि साम्य, न अर्थ-साम्य, न मकान नंबर का साम्य और न ही मुहल्ला-साम्य। मेरे मुहल्ले के ठीक तीन मुहल्ले छोड़कर बिहारीलाल जी का मकान और चिट्ठी मेरे डाक के डिब्बे में।

☐☐ दूसरी चिट्ठी देखी। यह पोस्टकार्ड था। किन्हीं जमनालाल सेन के नाम था। यह भी मेरे डिब्बे में था। इबारत थी :

"मान्यवर,

आप हमारी दूकान से नौ सौ रुपए का कपड़ा उधार ले गए थे। साल भर हो गया, अभी तक पैसा अदा नहीं किया। इससे पहले कि हम कोई और कार्रवाई करें, बाइज्जत पैसा अदा करने की कृपा करें।"

नीचे सेठ हुकुमराय दलपतचंद, वस्त्रों के थोक और फुटकर व्यापारी के हस्ताक्षर थे। पोस्टकार्ड के ऊपर नीली स्याही मे छपा था : उधार मुहब्बत की कैंची है।

तीसरी चिट्ठी देखी। यह मेरी ही थी। मेरी ही भेजी हुई थी तथा लौटकर मेरे ही पास आ गई थी। मैं आम तौर पर लिफाफे के टिकटवाले साइड पर पानेवाले का पता लिखता हूँ और पीछे की ओर प्रेषक करके अपना नाम और पता। यह पत्र कल ही डिब्बे मे डालकर आया था। आज वापस मुझे मिल गया। वैसे स्थानीय चिट्ठियाँ भी आम तौर पर सात-आठ दिन बाद ही मिलती हैं, मगर यहाँ मुझे डाक विभाग की कार्यक्षमता की दाद देनी पड़ी।

ऐसा अक्सर हो रहा है। केवल मेरे साथ नहीं, मेरी जानकारी मे जितने लोग हैं लगभग सभी के साथ हो रहा है। इसकी चिट्ठी उसके यहाँ जा रही है, उसकी चिट्ठी इसके यहाँ आ रही है। गंतव्य को डाली गई चिट्ठी दो-तीन महीने बाद खुद अपने को ही मिल रही है। आज किया मनीआर्डर साल भर बाद प्रेषिती को मिल रहा है।

मेरा एक मित्र है। अभी नया-नया लेखक बना है। अक्सर मेरे पास

आता रहता है। पत्रिकाओं द्वारा रचना की स्वीकृति-अस्वीकृति के बारे में अपने अनुभवों के आधार पर उसने कुछ निष्कर्ष निकाल रखे हैं—मसलन रचना भेजने की तारीख के दस दिन के अंदर वापस मिल जाए तो साफ तौर पर अस्वीकृत हो गई है। यदि महीना भर तक न लौटे तो विचारार्थ संपादक के पास है। यदि दो-तीन महीने तक न लौटे तो समझो कि छपकर आनेवाली है। पिछले दिनों उसकी चार-पांच रचनाएँ कोई चार-चार, पांच-पांच महीने से नहीं लौटीं। कह रहा था कि छपकर आनेवाली है। मैंने कहा कि पता कर लो, हो सकता है तुम्हारी रचनाएँ किसी आर. एम. एस. कार्यालय में विचारार्थ पड़ी हों या कोई पोस्टमैन उन्हें स्वीकृत-अस्वीकृत करने पर विचार कर रहा हो। और हुआ भी यही। उसकी तीन रचनाएँ तीन-चार महीने पोस्ट आफिस मे विचारार्थ रखी जाकर उसे लौटा दी गईं। जो एक अभी तक नहीं मिली है उसके बारे में वह अभी भी उम्मीद बांधे है। मेरी शुभकामनाएँ उसके साथ हैं।

पिछले दिनों मुझे दो महीने तक कोई भी चिट्ठी नहीं मिली। रोज कुछ न कुछ डाक मेरी आती रहती है। जीवन में पहली बार ऐसा हुआ कि दो महीने तक कुछ भी नहीं आया। संदेह होने लगा कि कहीं सरकार ने डाक विभाग बंद तो नहीं कर दिया? दो-एक मित्रों से चर्चा की। उन्होंने कहा कि डाक-तार विभाग तो बराबर चल रहा है परंतु डाक वितरण पद्धति में एक मौलिक परिवर्तन हुआ है। अब चिट्ठियों की छँटाई पोस्ट ऑफिस में न होकर एक अन्य जगह होने लगी है। यह मित्र मुझे मुहल्ले के नुक्कड़ पर रखे एक म्युनिसिपैलिटी के कूड़ादान के पास ले गया और अंदर पड़ी हुई कोई तीन-चार सौ चिट्ठियां बतलाते हुए बोला कि इनमें से तुम अपनी चिट्ठियां छांट लो। यही चिट्ठियों की छँटाई और वितरण की नई व्यवस्था है। स्वयंसेवा पद्धति है। सारे मुहल्ले के लोग अपनी चिट्ठियां यहीं से आकर ले जाते हैं।

मैं कहा कि यह कैसे हुआ? तो वह बोला कि उसके यहाँ भी जब एक माह तक कोई चिट्ठी नहीं आई तो उसने थोड़ी जासूसी की और

पोस्टमैन के पीछे लगकर पता लगाया कि चिट्ठियाँ कहाँ जाती हैं। उसके बाद उसने दूर बहता हुआ पानी का एक नाला बताया कि वह पोस्टमैन उन चिट्ठियों को फाड़-फाडकर उस नाले मे विसर्जित कर दिया करता था। तब उसने पोस्टमैन से निवेदन किया कि भैया, यह नाला दूर है और यहाँ तक आने में तुझे तकलीफ होती है तथा चिट्ठियाँ फाड़ने में भी बेकार श्रम-शक्ति का अपव्यय होता है। तू तो हमारे मुहल्ले के कूड़ेदान मे इन्हें डाल जाया कर, वहाँ से हम लोग अपनी-अपनी चिट्ठियाँ निकाल लिया करेंगे। तेरी भी तकलीफ बचेगी, और हमारी भी तकलीफ बचेगी। पोस्टमैन शरीफ था, उसने बात मान ली। मित्र की प्रेरणा पर मैंने कूड़े-दान मे हाथ डालकर खखोड़ा। मेरी कोई चिट्ठी वहाँ नही थी। मित्र ने कहा कि नियमानुसार नगर निगम के सफाई विभाग को इस कूड़ेदान को रोज साफ करना चाहिए मगर निगम की अक्षमता से ऐसा महीनों से नही हो रहा है। हमें एहसानमद होना चाहिए निगम का कि उसकी कृपा से हमें अपनी चिट्ठियाँ तो मिल रही हैं।

"मगर मेरी चिट्ठियाँ कहाँ गईं ?" मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि जो पोस्टमैन तुम्हारे इलाके मे चिट्ठियाँ बाँटता है। वह कह रहा था जरूरी चिट्ठियाँ वह छँटाई के समय देख लेता है और उन्हें अवश्य लोगों के घर तक पहुँचा देता है। बाकी गैर जरूरी चिट्ठियाँ उसके घर चूल्हा जलाने के काम आ जाती हैं। उसने कहा कि तुम्हारी डाक मे क्या रहता होगा—पत्रिकाएँ, अस्वीकृत रचनाएँ, पत्रिकाओं के छपे हुए पोस्टकार्ड, एक-दो पाठको के पत्र, रचनाओ के पारिश्रमिक के चेक, कुछ परिचर्चा, आयोजकों की चिट्ठियाँ। ये सब अगर तुम्हें पिछले दो महीने नहीं मिले तो जाहिर है कि ये सब फिजूल डाक थी जिसकी छँटाई और वितरण न करके पोस्ट ऑफिसवालो ने राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण श्रम और समय बचा लिया। इसके अलावा यदि पोस्टमैन ने तुम्हारी डाक से चूल्हा जला लिया है तो वह डाक अततः सार्थक ही हुई है।

बात अखरनेवाली थी। हालाँकि शिकायतो मे मेरा विश्वास शुरू से ही नही रहा है। किसी की भी शिकायत किसी को भी कर दो, लिखित करो, मौखिक करो, कुछ होता नही है। नीचे के कर्मचारी की शिकायत,

स्त्री के रूप में एक दहकता हुआ शोला उसके साथ होता है जिसे हिल स्टेशन पर ले जाकर ठंडा करना आवश्यक होता है। मेरे एक मित्र की शादी हुई तब मैंने उससे कहा कि किसी पहाड़ी स्थान पर जाकर ठंडे हो जाओ।

"क्या करेंगे ?" वह बोला था, "मुझे ठंडी औरत ही मिली है।"

उधर वह स्त्री अपनी सहेलियों में कह रही थी कि "बहन, क्या पहाड़ जाएँ आदमी ही ठंडा मिला है। अत: अपने लिए यहीं ठंडक है।" दरअसल बात यह थी कि इस आदमी को ससुर ठंडा मिला था, लिहाजा दहेज ठंडा था और जब दहेज ठंडा था तो सारा उत्साह ठंडा था। लड़के की माँ सोच रही थी कि यह नई बहू जल्दी ठंडी हो जाती तो लड़के के लिए दूसरी दहेज-दार बहू ले आते और लड़के को हनीमून मनाने किसी हिल स्टेशन पर भेजते।

मेरे साथ यह गर्मीवाली स्थिति कभी नहीं रही। न वातावरण की गर्मी ने मुझे सताया, न पैसे की गर्मी ने बल्कि पैसों के मामले में मेरा तापमान शून्य डिग्री के आसपास ही मंडराता रहा। विवाह की गर्मी भी अन्य मध्यवर्गीय नौकरीपेशा लोगों की तरह अपने ही शहर में ठंडी की, कभी कैजुअल लीव लेकर तो कभी तड़ी मारकर।

तब फिर मैं हिल स्टेशनों पर कैसे गया ? क्या मैं नौकरीपेशा लोगों के दार्जीलिंग या श्रीनगर या कोडाईकनाल में होनेवाले सम्मेलन में जुगाड़ बैठा कर गया जो कि अक्सर गर्मियों में आयोजित किए जाते हैं और जान-बूझकर किसी दूर के हिल स्टेशन पर रखे जाते हैं ? उत्तर है—नहीं। जुगाड़ बैठाकर जानेवालों की सूची में मेरा नाम कभी आया ही नहीं। वह किसी भी प्रकार के जुगाड़ की सूची हो। बात यह नहीं कि मैं जुगाड़ बैठाने में कमजोर था। मगर बात यह थी कि दूसरे लोग जुगाड़ बैठाने में मुझसे ताकतवर थे। अब ताकतवर का जुगाड़ हमेशा बैठता है, यह आप जानते ही हैं। मैं इस बात को लेकर कभी दुखी नहीं हुआ। मगर मेरा एक सहयोगी अक्सर दुखी हो जाता है। पिछले साल एक सम्मेलन माउंट

आबू में होना था। सम्मेलन में कुछ विशेषज्ञों को दफ्तर की ओर से भेजा जा रहा था। मेरा यह सहयोगी उस विषय का सबसे दक्ष प्राणी माना जाता था, मगर जब जानेवालों की सूची बाहर सूचनाफलक पर टँगी तो उसमें इसकी जगह बड़े साहब के एक करीबी रिश्तेदार का नाम था।

"यह जाकर क्या करेगा?" सहयोगी ने पूछा था।

"आबू घूम आएगा। पंद्रह दिन का कैंप है, सैर कर आएगा।" मैंने कहा।

"मगर जाना तो मुझे चाहिए।" उसने कहा।

"किस खुशी में?" मैंने पूछा।

"विशेषज्ञ मैं हूं। मैं जाता तो कान्फ्रेंस को मुझसे कुछ लाभ हो सकता था, कान्फ्रेंस से मुझको कुछ लाभ हो सकता था।"

"तो तुम समझ रहे हो कि वहाँ सब विशेषज्ञ ही पहुँचेंगे?"

"सम्मेलन के परचों में तो यही लिखा है।"

उत्तर में मेरे पास सिवाय ठहाका मारकर हँस देने के और कोई इलाज नहीं था। इस आदमी के जीवन के कान्सेप्ट्स अभी क्लीयर नहीं हैं। वह खामखाँ साहब से जाकर जूझ गया और परिणाम यह हुआ कि उसका नुकसान हो गया। विभागीय जाँच चली और उसकी दो वार्षिक वेतन-वृद्धियाँ रोक दी गईं। वह कह रहा था कि सचाई का जमाना नहीं रहा। मैंने कहा कि सचाई का जमाना कभी नहीं रहा। क्या तुमने इसके अलावा कोई और जमाना देखा है? उत्तर में उसने नकारात्मक भाव से सर हिलाया। तो फिर मैंने कहा कि जो देख रहे हो, उसी को सच मानो। सचाई से समझौता करो और दुखी मत हो।

मैंने इस आदमी से पूछा कि तुम्हें दुख किस बात का है? कान्फ्रेंस में न जाने का, या हिल स्टेशन पर न जाने का? उसने स्पष्ट स्वीकार किया कि असल दुख उसे हिल स्टेशन न जा पाने का है। तब मैंने कहा कि तुम अपने पैसों से हिल स्टेशन हो आओ।

"बहुत पैसा लगता है।" उसने कहा था।

"तुम ऑफ सीजन में आओ।" मैंने कहा था।

"मजा कैसे आएगा?"

चंदा

अभी-अभी मुहल्ले के लडके होली का चदा लेकर गए हैं और तब से मैं चदे के बारे मे सोच रहा हूँ। बारिश के दिनो मे यही लड़के गणेश जी का चदा लेने आए थे। फिर कुछ दिन बाद दुर्गा जी का चदा लेने आए थे। तब भी कुछ दिन चंदे के बारे में सोचता रहा था कि इस परपरा की, यानी चंदा उगाहने की शुरुआत किसने, कब और क्यों की होगी ?

मेरे पड़ोस मे इतिहास का एक प्रोफेसर रहता है। उसने कहा कि चंदे की परंपरा चंद्रगुप्त मौर्य के जमाने से चली आ रही है। चाणक्य ने नद वश के नाश के लिए चद्रगुप्त मौर्य को खडा किया था। चूँकि इस काम के लिए 'गुप्त रूप से काफी चंदा' इकट्ठा किया गया था, इसलिए सम्राट का नाम भी 'चंद्रगुप्त' रखा गया। बाद को चलकर चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के जमाने में भी जनता से सार्वजनिक कार्यों के लिए काफी चंदा इकट्ठा किया गया। इतिहास मे तीसरा प्रमाण चंदबरदाई के जमाने का मिलता है जिसमें कवि को काबुल तक जाने के लिए चंदा इकट्ठा करना पडा था।

इतिहास के प्रोफेसर ने चंदेल राजाओ का सबंध भी चंदे से जोड़ा। उसने कहा कि उत्सव के लिए चंदे की परंपरा शायद चदेल राजाओ के जमाने मे पडी। उद्गम स्थल के बारे में उसकी राय यह थी कि इतिहास में सबसे पहले शायद महाराष्ट्र के चंद्रपुर अथवा चादा नामक शहर से यह परंपरा चली।

कुछ लोग इस परंपरा का श्रेय मध्यप्रदेश को देते हैं और कहते हैं कि सबसे पहले चंदेरी नामक स्थान से परंपरा का सूत्रपात हुआ जहां कि एक समूचे किले का निर्माण चंदे की रकम से करवाया गया था।

एक पौराणिक ने कहा कि चंदे का सीधा संबंध चंद्र अथवा चाँद से है। चंद्र निकला था समुद्र-मंथन से। समुद्र-मंथन-जैसा बड़ा प्रोजेक्ट देवों और दानवों ने चंदा करके ही हाथ में लिया था। उस घटना की याद को चिर-स्थायी बनाने के लिए ही उसमें से निकली किसी चीज का नाम उन्होंने चंदा रखना चाहा। इसके लिए उन्हें रात में चमकनेवाला यह ठंडा गोला ही उपयुक्त लगा। इसके घटने-बढ़नेवाले रूप से वे अधिक प्रभावित हुए। कोई ज्यादा चंदा देता है, कोई कम देता है, कोई बिलकुल नहीं देता। कोई चंदा खा भी जाता है जैसे चाँद को राहु खाता है। इसलिए सर्वसम्मति से चाँद का नाम चंद्रमा, चांद या चंदा रखा गया। आज भी समुद्र-मंथन की याद जब भी आती है तो चाँद को देखकर ही आती है। दीगर कौन-सी बाइस-चौबीस चीजें निकली थीं, इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता।

मैंने कुछ चंदा बटोरनेवालों के विचार भी जानने चाहे। एक लड़का जिसका नाम मूलचंद था, बोला कि उसका मूल काम ही चंदा बटोरना है। उसने कहा कि चंदा चूंकि चंद लोग मिलकर वसूल करते हैं, इसलिए चंदा कहलाता है। भीखचंद नाम के एक अन्य चंदा बटोरक ने कहा कि चूंकि चंदा केवल चंद लोग ही देते हैं, सभी नहीं देते, इसलिए चंदा कहलाता है।

लड़कों के नामों में प्रेमचंद, मुलायमचंद, सुगनचंद, लाभचंद, मूलचंद, भीखचंद आदि काफी किस्म के 'चंद' मिलते हैं जो उत्सवों के समय चंदा बटोरने में काफी उत्साह दिखाते हैं। कुछ लड़कियों का नाम भी चंदा पाया जाता है। क्यों कर, यह मैं आज तक नहीं समझ पाया।

एक भाषाशास्त्री ने कहा कि चंदा शब्द चिंदी से बना है। जैसे चिंदी-चिंदी जोड़कर थान बन जाता है उसी तरह थोड़ा-थोड़ा चंदा जोड़कर काफी बड़ी राशि इकट्ठी हो जाती है तथा जैसे थान में से कपड़ा काट-काट-कर पहनने के कपड़े बन जाते हैं, उसी तरह चंदे में से भी उत्साही कार्य-कर्ताओं के पाजामे, पतलून वगैरह निकल आते हैं। वैसे भी चंदे का सीधा

मतलब यह है कि चंद लोग मिलकर जिस सार्वजनिक राशि का तिया-पाँचा करें, वह चंदा कहलाता है।

एक चंदा देनेवाले ने कहा कि चंदा शब्द चंदिया से बना है। गणेशोत्सव के समय तथा दुर्गोत्सव के समय गली-गली इतनी ज्यादा तादाद मे झाँकियाँ बिठाई जाती हैं तथा होलिकोत्सव के समय गली-गली इतनी होलियाँ जलाई जाती हैं तथा इतनी अधिक मात्रा में लड़कों की टोलियाँ चंदा लेने निकलती हैं कि चंदा देते-देते चंदिया निकल आती है, इसलिए इस राशि को चंदा कहा जाता है।

मुझे याद है, जब हम लोग छोटे-छोटे थे, हम भी चंदा वसूलने निकलते थे। होली की लकड़ियाँ मैदान मे सजाने के बाद हम लोग लाउड स्पीकर किराए से लाते थे तथा जो गाना ज्यादातर बजाते थे वह था—चंदा की चाँदनी में झूमे-झूमे दिल मेरा। हम लोग झूम-झूमकर गाते थे तथा होली के आस-पास, गोल-गोल घेरे में नाचते थे। तब गाने का सही अर्थ समझ मे नहीं आता था। अब लगता है कि गाना कितना मौजूँ था। चंदे के पैसे से जो चाँदनी होती थी, उसमें हम लोगों का दिल झूम-झूमकर नाचता था।

एक और गाना उन दिनों बहुत मशहूर था—दम भर जो उधर मुँह फेरे, ओ चंदा, मैं उनसे प्यार कर लूँगा। नायक 'लूँगा' गाता था तथा नायिका यही लकीर दुहराकर अंत में 'लूँगी' कहती थी। हम लोगों की चंदा-उगाऊ टीम का अगुआ चंद्रिकाप्रसाद इस गीत को बहुत पसद करता था। जरा ही हमारी टीम ने इधर-उधर मुँह फेरा, वह चंदे की रकम से अतीव प्यार करने लगता था तथा एकाध दस के नोट को अत्यंत आत्मीयता से जेब में रख लेता था।

हमारे मुहल्ले मे संस्कृत के आचार्य एक पंडित जी रहते थे। वे चदा बटोरनेवालों को 'चाडाल' कहते थे। वे कहते थे कि चाडाल प्राचीन काल में काफी सम्मानजनक शब्द था जो चंदा उगाहनेवालो के लिए प्रयुक्त होता था। चदा बटोरनेवाले एक चादर लेकर निकलते थे तथा आवाज़ लगाते थे—'चंदा डाल।' जब ये लोग बल प्रयोग करके चदा बटोरने लगे तब से इन्हें चांडाल कहा जाने लगा। लिहाजा 'चांडाल' शब्द 'चंदा डाल'

से बना है।

चंदा बटोरनेवालों की एक और टीम मेरे घर की ओर बढ़ रही है। मेरे मुहल्ले के होलीवाले तो पहले ही चंदा लेकर जा चुके हैं। ये पता नहीं किस मुहल्ले के हैं। हो सकता है, आस-पास के किसी दूसरे शहर के हों। बहरहाल, चंदा तो वे लेकर ही जाएंगे। देखूं, ये कितनी चांद उधेड़ते हैं।

दो तिहाई सफेद बालोंवाला आदमी

वह आदमी जिसके सर के बालों मे कोई एक तिहाई काले बालों की मिलावट थी, आईने में अपना मुँह देख रहा था और गंभीरतापूर्वक कोई निर्णय ले लेने की स्थिति मे था। अगर सफेद बाल एक तिहाई होते तो वह एक-एककर उन सबको अपनी बीबी से उखड़वा सकता था। पहले वह ऐसा करता रहा था। मगर बाल दो तिहाई सफेद थे और दो तिहाई बालों को उखड़वा देना अपनी समूची चाँद को गंजा करवा लेना था और वह स्थिति वर्तमान स्थिति से निश्चित ही भयानक होती। उसने खिजाब के कुछ विज्ञापन पढे और मिलावट की समस्या को रंग देने का त्वरित निर्णय लिया।

उसकी उम्र मात्र 35 की थी और सर के 66.6 प्रतिशत बाल सफेद हो गए थे। बालो को रंग लेने से वह जवान दिखने तो लगेगा मगर वाकई जवान नहीं हो जाएगा, यह वह भी जानता था। उसे पता था कि सचाई को छुपाना उतना आसान नही है जितना कि आमतौर पर समझा जाता है। खिजाब की काली सतह के नीचे छुपा सफेद बाल सूई की तरह उसकी खोपड़ी की चमड़ी में छेद करता हुआ निकल आएगा और खिलखिलाकर कहेगा, 'पार्टनर, मुझे रंगकर तुम दुनिया को धोखा दे सकते हो, मुझे नहीं।' उसने अक्सर देखा था कि जो लोग बालों को नही रंगते, उनकी खोपड़ी के बाल ऊपर से सफेद होना शुरू होते हैं तथा जो रंग लेते हैं

उनकी खोपड़ी के बाल नीचे से सफेद होना शुरू होते हैं।

उसने आईना आँखों के सामने से हटा दिया और एक जम्हाई लेकर उठ खड़ा हुआ। बाहर बरामदे में आकर बैठा। सामने के क्वार्टर के बरामदे में क्वार्टर के आवंटिती की पत्नी रेलिंग से झुकी हुई खड़ी थी। इस स्त्री की एक आँख असली थी तथा एक में पत्थर की आँख की मिलावट थी। कहते हैं किसी विशेष प्रकार का सूरमा आँख में आंज लेने से उसकी यह आँख हमेशा-हमेशा के लिए चली गई थी। सुरमे के विज्ञापन में दिया गया था कि वह सुरमा आँख की रोशनी को तेज करनेवाला तथा आँखों को ठंडक पहुँचानेवाला है। लिहाजा सुरमे ने दोनों काम कर दिए थे। एक तो उस स्त्री की आँख में ठंडक पहुँचाकर उसे हमेशा-हमेशा के लिए ठंडी कर दिया था तथा उस आँख की रोशनी इतनी तेज कर दी थी कि उससे मन के अंदर तक का दिख जाता था। बाहर देखने की जरूरत ही नहीं रही थी। सुरमे में न जाने किस चीज की मिलावट थी। इस स्त्री के पति ने उस कंपनी पर मुकदमा भी दायर किया था। मगर जैसा कि जाहिर है, दुनिया में हमेशा पैसेवाला जीतता है, जीती कंपनी ही थी और इस आदमी को कम्पनी से हजार-पांच सौ रुपया मुआवजा जरूर मिल गया था मगर अपनी बीवी की आँख वह कंपनी से नहीं ले सका था।

सामने के क्वार्टर के आवंटिती की पत्नी एक झटके के साथ उठकर सीधी हुई और कमरे के अंदर चली गई। यह भी अपने बरामदे से हटकर बाथरूम में गया और नहाने का उपक्रम करने लगा। नल अभी चल रहा था। वैसे इसके नहाने के समय तक अक्सर वह बंद हो जाता था, मगर आज चल रहा था। इस नल के पानी में भी कुछ दिन पहले गटर के पानी की मिलावट हो गई थी और कीड़ों-मकोड़ों तथा अन्य प्रोटीन तत्वों से मिला हुआ पौष्टिक पानी नल से सप्लाई किया जाने लगा था। शिकायतें करने पर कुछ दिन तो पता ही नहीं चला, फिर जब पता चला तो यह पता चला कि किसी स्थान पर सीवर लाइन का पानी, नल के पानी में मिलकर आ रहा है।

नलवाले यह कहते थे कि गलती सीवर लाइनवालों की है, जो उन्होंने नल की पाइप लाइन के बगल में सीवर लाइन बिछा दी तथा

सीवर लाइनवाले यह कहते थे कि नलवालों की गलती है, जो उन्होंने सीवर लाइन की बगल में नल की पाइप लाइन बिछा दी। अब ये दोनों लाइनें एक ही स्थान पर फूटकर परस्पर एकाकार कैसे हो गई, इसका जवाब कोई नहीं देता था। बहरलाल वह गलती ठीक ही दुरुस्त हो गई। मगर मुहल्ले के लोग उस पौष्टिक पानी के इतने अभ्यस्त हो गए थे कि जब बाद को शुद्ध पानी मिलने लगा तो अधिकतर बीमार रहने लगे। एक आदमी, जो जरा बुद्धिजीवी किस्म का था, कहता भी था कि इससे तो वह पहलेवाला पौष्टिक पानी ही अच्छा था। जब उससे पूछा गया कि क्या अच्छा था? उस पानी में मानव-मल का घोल होता था। तो वह बोला कि सुअर को देखो। उसका मुख्य खाद्य क्या है, सभी को पता है। उसकी हेल्थ देखो। तुमने किसी सुअर को कभी अस्पताल मे भर्ती होते नही देखा होगा। वह आदमी कह रहा था कि वह म्युनिसिपैलिटी को आवेदन करेगा कि कृपया सीवर लाइन और पाइप लाइन फिर से जोड़ दी जाएँ। बल्कि दोनों काम एक ही लाइन से किए जाएँ। सुबह दो घंटा उसी लाइन से सीवर बहाया जाए तथा उसके बाद दो घंटा उसी लाइन से पीने का पानी सप्लाई किया जाए। इससे आर्थिक बचत भी होगी और लोग स्वस्थ भी रहेंगे। देखें म्युनिसिपैलिटी इस आदमी की बात पर विचार करती है या नहीं।

वह आदमी जिसके सिर के एक तिहाई बाल काले तथा दो तिहाई बाल सफेद थे, नहाने बैठा। वह चलते नल के ठीक नीचे बैठ गया और बदन भिगोने के बाद साबुन लगाने लगा। उसे याद आया, उसके दोस्त शर्मा का वह वाकया, जब वह दफ्तर में पूरे बदन पर मलहम लगाकर आया था। कह रहा था कि नहाने के साबुन मे न जाने किस चीज की मिलावट थी—नहाते-नहाते पूरे बदन में फुंसियाँ उठ आई थीं। इसने अपने साबुन को सूंघा। हालाँकि वह पिछले पंद्रह दिनों से इसी साबुन से नहा रहा था, मगर फिर भी जब-जब उसे शर्मा के बदन पर उठी फुंसियाँ याद आ जाती, साबुन इस्तेमाल करते समय उसके बदन मे सिहरन-सी उठ आती थी।

नहाकर टॉवेल लपेटकर वह बाहर आया तथा आईना सामने रखकर

सर में तेल डाला। सुन रखा था कि मिलावटी तेल सर में डालने से भी बाल सफेद होते हैं। बलिक कभी-कभी झड़ भी जाते हैं और सर पर एक चिकनी साफ-सुथरी खल्वाट निकल आती है। सपाट मैदान हो जाता है और मौका पड़ने पर सर से मसाला पीसने का काम भी लिया जा सकता है। मगर इस प्रकार की कंपनियाँ ग्राहक के नुकसान के साथ-साथ क्या अपना खुद का भी नुकसान नहीं करती ? ऐसा तेल बनाने में कंपनी को खुद को नुकसान है। यदि ग्राहक के सर में बाल रहेंगे तो तेल की माँग बनी रहेगी। जब बाल ही उड़ जाएँगे तो तेल कौन खरीदेगा ? लिहाजा वे कंपनियाँ बेहतर हैं, जिनके तेल के इस्तेमाल से बाल सफेद भले हो जाते हों, मगर झड़ते न हों। एक बार उसने गौर से एक विज्ञापन देखा था। ऊपर तेल का विज्ञापन था, तथा नीचे खिजाब का। लिखा था कि हमारी कंपनी का तेल इस्तेमाल कीजिए, बहुत बढ़िया है। तथा नीचे लिखा था कि सफेद बालों के लिए हमारी ही कंपनी का खिजाब इस्तेमाल कीजिए। अब स्पष्ट है कि यह कंपनी पहले अपने द्वारा निर्मित तेल का इस्तेमाल ग्राहकों से करवाती थी और जब उस तेल से बाल सफेद हो जाते थे तो ग्राहक इस कंपनी का खिजाब भी इस्तेमाल करने के लिए अपने आप मजबूर हो जाता था। वैसे इस कंपनी ने एक बार एक विज्ञापन और दिया था। शिकायतें आ रही थीं कि खिजाब में न जाने किस चीज की मिलावट है जिससे लगाते वक्त सर की चमड़ी में खुजली होती है। लिहाजा कंपनी ने ऊपर तेल का विज्ञापन, बीच में खिजाब का विज्ञापन, सबसे नीचे दाद और खुजली के मरहम का विज्ञापन देना शुरू कर दिया था। विज्ञापन आकर्षक था तथा उसमें लिखा रहता था कि ग्राहक बंधु निराश न हों, अब हमारी सफल कंपनी ने दाद-खाज का मरहम भी बनाना शुरू कर दिया है। आपका सहयोग हमें मिलता रहा तो हम और भी नए-नए उत्पादन लेकर आपकी सेवा में उपस्थित होंगे।

इस आदमी ने जिसके सर के बालों में एक तिहाई काले और दो तिहाई सफेद बालों की मिलावट थी, बालों में कंघी की और खाना खाने बैठा। खाने में पौष्टिक तत्त्वों का अभाव भी बदन में कमजोरी पैदा करता है और असमय में बाल सफेद हो जाते हैं, ऐसा उसने पढ़ रखा था। सब्जी

पड़े हुए ममाले को उसने एक बार कटोरी उठाकर सूंघा और बेमन से ने लगा। पत्नी ने पूछा कि क्या बात है, तो उसने कहा कि धनिया जार से पिसा हुआ मत मँगवाया करो। पत्नी ने पूछा क्यों? तो बदले में उसने ताँगेवाले से प्राप्त जानकारी दुहरा दी। एक बार वह ताँगा स्टैंड पास से होकर गुजर रहा था। वहाँ दो-दो रुपए प्रति डलिया के हिसाब घोड़े की लीद उठा-उठाकर कुछ लोग ले जा रहे थे। उसने ताँगेवाले से छा कि ये इसका क्या करेंगे? तो ताँगेवाले ने कहा कि साहब, ये लीद ले जाकर पानी में भिगो देंगे फिर उसका घोल बनाकर छान लेंगे। कपड़े से छान लेने पर मैला पानी और पिसा धनिया अलग-अलग हो जाएगा। दो रुपए की लीद में से कोई आठ-साढ़े आठ रुपए का पिसा धनिया निकल आएगा। अपन भी खुश, घोड़ा भी खुश, व्यापारी भी खुश और खानेवाला भी खुश। क्यों पूछने पर ताँगेवाले ने बताया कि अपन इसलिए खुश कि जो लीद फालतू फिकती, उससे दो रुपए मिल गए। घोड़ा इसलिए खुश कि वह आदमी के कितने काम कर रहा है। वह आदमी को सवारी तो मुहैया करता ही है, उसके लिए खाद्य पदार्थ भी सप्लाई कर रहा है। व्यापारी इसलिए खुश कि चौगुना प्रॉफिट। धनिया पीसने की मशीन लगाने की जरूरत ही नहीं। और खानेवाला इसलिए खुश कि जो मजा लीद मिले धनिए के ममाले में आता है, वह शुद्ध धनिया में कहाँ।

ताँगेवालों का भी एक लॉजिक होता है, भले ही वह लॉजिक आपके गले न उतरे। इस आदमी के गले भी सब्जी उतर नहीं पा रही थी और जब बीवी ने देखा कि वह धनिया पर संदेह कर रहा है तो उसने कहा कि वह बाजार से खड़ा धनिया लाकर अपने सामने चक्की पर पिसवाती है। और जहाँ तक घोड़े की लीद का सवाल है, कल ही पेपर में था कि खाद्य पदार्थों में मिलावट करनेवाला एक गिरोह पकड़ा गया है और इस कार्रवाही के तहत वह ताँगेवाला, वह व्यापारी और वह घोड़ा तीनों बंद कर दिए गए हैं और उन पर मुकदमा चलेगा। खानेवालों को वे लोग फिलहाल नहीं पकड़ रहे हैं मगर लोगों ने यदि वह धनिया खाना नहीं छोड़ा तो उन्हें भी पकड़ा जा सकता है।

"मगर यह हुआ कैसे ? अचानक प्रशासन इतना सख्त कैसे हो गया ?" उसने पत्नी से पूछा, "क्या किसी बड़े अफसर या मंत्री ने वह घनिया खा लिया ?"

"खाया नहीं। जिस अफसर के इशारे पर कारंवाई हुई वह एक अरसे से वह घनिया खाता रहा था। उसे एक दिन दूसरा घनिया खाने को दिया गया जो कि शुद्ध घनिया था। दैट ऑफीसर वाज ए मैन ऑफ टेस्ट। वह तुरंत समझ गया कि इस घनिया में वह मजा नहीं है, जो उस पिछलेवाले में था। अतः उसने तो आदेश दिए थे कि शुद्ध घनिया बेचनेवाले पर कारं-की जाए। मगर मारे गए अंततः ये लोग। दरअसल बीच के कर्मचारी बहुत गड़बड़ करते हैं। ऊपर से आदेश कुछ आता है और नीचेवाले उसका कुछ का कुछ बना डालते हैं। भ्रष्टाचार यहीं से शुरू होता है। वह शुद्ध घनिया वाला कुछ ले-देकर बच गया होगा, और ये लोग फँस गए। अब इन लोगों के सामने भी यही विकल्प है कि कुछ ले-देकर बचें।"

"मगर ये लोग बच गए तो हमारे सर के बाल सफेद होने से कैसे बचेंगे ?

"ईश्वर ही बचा सकता है। और वहाँ लेना-देना नहीं चलता।"

वह आदमी बीवी की बात से सहमत नहीं हुआ। उसने बीवी से कहा कि वह पता लगाए कि ईश्वर कहाँ रहता है ? यदि वह इस दुनिया में ही है तो उसके यहाँ भी लेना-देना चलना होगा। जब चारों ओर खुले आम लेना-देना चल रहा है तो उसके यहाँ भी होगा। अपन भी कुछ पैसे-धेले देकर बाल काले करवा लेंगे, बल्कि चेहरे पर झुर्रियाँ भी मिटवा लेंगे।

बीवी उसकी बात सुनकर हँसी थी। मगर वह आदमी जिसके सर के बालों में दो तिहाई सफेद और एक तिहाई काले बालों की मिलावट थी, मिलावट की समस्या पर गंभीरता से सोच रहा था। वह अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मिलावट की समस्या को जड़ से तो नहीं मिटाया जा सकता, हाँ उस पर लीपा-पोती अवश्य की जा सकती है, लिहाजा वह बालों पर पुताई करके उन्हें काले बनाएगा। वह उसी शाम खिजाब खरीद लाया। जब बीवी ने कहा कि इस तरह वह पब्लिक को धोखा देगा, तो उसने

कहा कि सार्वजनिक जीवन में बिना पब्लिक को धोखा दिए काम चल ही नहीं सकता। और इस तरह उसने उसी शाम मिलावट की समस्या पर काबू पा लिया था।